॥ श्रीः ॥

वसुनन्दीश्रावकाचार

हिन्दीभाषा अर्थसहित.

जिसको

जैनसिद्धान्तप्रचारक मण्डली देवबन्द

की तरफसे

बाबू सूरजभानु वकील

देवबन्द ने

"लक्ष्मीनारायण" यन्त्रालय

मुरादाबाद में

छपवाकर प्रकाशित किया.

मूल्य ॥)

सम्वत् १९६६

PRINTED BY
Shiv Lal Ganeshi Lal,
at the Lakshmi Narayan Press,
Moradabad.

श्रीवसुनन्द्याचार्यकृत

श्रावकाचार

मंगलाचरण.

सुरवइतिरीटमणिकिर- । णवारिधाराहिसित्तपयकमलं ॥
वरसयलविमलकेवल- । पयासियासेससत्तत्थं ॥ १ ॥
सायारो अणयारो । भवियाणं जेण देसिओ धम्मो ॥
णमिऊण तं जिणंदं । सावयधम्मं परूवेमो ॥ २ ॥

अर्थ-देवोंकेइन्द्र के मुकटों के रत्नोंकी किरणरूपी जल धारा से जिसके पदकमलों का अभिषेक किया जाताहै अर्थात् जिसके पैरों में देवेंद्र अपना सिर रखते हैं, जिसने उत्कृष्ट संपूर्ण और निर्मल केवल ज्ञानसे सब सत् तत्वोंको प्रकाशित कियाहै, जिसने श्रावक और मुनिका धर्म भव्य जीवों को बताया है, मैं ऐसे जिनेंद्र को नमस्कार करके श्रावक धर्मका स्वरूप वर्णन करता हूं ॥

उत्थानिका ।

विउलगिरिपव्वए यं । इंदभूइणा सेणियस्स जह दिंह ॥
तह गुरुपरिवाडीए । भणिज्यमाणं णिसामेह ॥ ३ ॥

अर्थ-विपुलाचल पर्वत पर अर्थात् श्रीमहावीर स्वामी के समव सरणमें इन्द्रभूती (गौतम गणधर) ने जिस प्रकार श्रेणिक राजा को बताया उसही के अनुसार गुरु परिपाटी से मैं कहता हूं तुम सुनो-

दंसणवयसामाइय । पोसहसचित्तराइभुत्ती य ॥
ब्रह्मारंभपरिग्गह । अणुमदमुद्दिठ्ठ देसविरदाम्मि ॥ ४ ॥

अर्थ-दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित त्याग, रात्रिभोजन त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग, और उदिष्ट आहार त्याग यह देश विरती श्रावककी ११ प्रतिमा अर्थात् दर्जे हैं-

सम्यक्त्व और सप्ततत्व ।

एयारसठाणाई । सम्मत्तविवज्जियस्स जीवस्स ॥

जह्मा ण संति तह्मा । सम्मंण सुणह बोच्छामि ॥ ५ ॥

अर्थ-जिसको सम्यक्त्व नहीं है उसको इन ११ दर्जों में से कोई भी दर्जा नहीं होता है इस कारण मैं सम्यक्त्व का वर्णन करता हूं तुम सुनो-

अत्तागमतच्चाणं । जं सद्दहणं सुणिम्मलं होदी ॥
संकाइदोसरहियं । तं सम्मत्तं मुणेयव्वं ॥ ६ ॥

अर्थ-आप्त आगम और तत्वों में शंका आदिक दोष रहित निर्मल श्रद्धान होने को सम्यक्त्व जानना चाहिये-

अत्ता दोसविमुक्को । पुव्वापरदोसवज्जियं वयणं ॥
तच्चाइं जीवदव्वा-। दियाइं समयाहि णेयाइं ॥ ७ ॥

अर्थ-जिसमें कोई दोष नहीं वह आप्त है जिसमें पूर्वापर विरोधी कथन नहीं वह आगमहै, और जीव आदिक द्रव्यही तत्व हैं इनको शास्त्र से जानना चाहिये-

छुहतण्हाभयदोसो । राऊ मोहो जरा रुजा चिंता ॥
मच्चु खेऊ सेऊ । अरह मऊ वीहऊ जम्मं ॥ ८ ॥
णिद्दा तहा विसाऊ दोसा एदेहि वज्जिऊ अत्ता ॥
वयणं तस्स पमाणं । सुत्तत्थपरूपयं जह्मा ॥ ९ ॥

अर्थ-भूख, प्यास , भय, द्वेष, राग, मोह, जरा, रोग, चिन्ता मरण, खेद, पसीना, अरति, मद, विभ्रम, जन्म, निद्रा और विषाद यह १८ दोषकहलाते हैं, जो इन दोषोंसे रहितहै वह आप्तहै, सूत्रका अर्थ निरूपणकरनेवाले होनेसे उसके बचन प्रमाण होते हैं और सत्य होतेहैं-

जीवाजीवासवबंधसंवरणिज्जरा तहा मोक्खो ॥
एयाइ सत्त तच्चाइ सद्दहणं तस्स सम्मत्तं ॥ १० ॥

अर्थ-जीव, अजीव, आस्रव, बंध संवर निर्जरा, और मोक्ष यह सात तत्व हैं इनका श्रद्धान करना सम्यक्त्वहै-

सिद्धा संसारत्था । दुविहा जीवा जिणेहि पण्णत्ता ॥
असरीराणंतचउठ्ठयाणिया णिव्वुदा सिद्धा ॥ ११ ॥

अर्थ-सिद्ध और संसारि दो प्रकार के जीव श्रीजिनेंद्रने कहे हैं। सिद्ध वह हैं जो शरीर रहितहैं, अनंत दर्शन अनन्त ज्ञान

अनन्त वीर्य, और अनन्त सुख संयुक्त हैं, और जन्म मरणादिक से रहित हैं-

संसारत्था दुविहा । थावरतसभेददो मुणेयव्वा ॥
पंचविह थावरा खिदि- । जलग्गिवाऊवणफ्फइणो ॥ १२ ॥

अर्थ-संसारी जीव दो प्रकारके जानो, स्थावर और त्रस। स्थावर पांच प्रकारके हैं, पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पति-

पज्जत्तापज्जत्ता । बायरसुहुमा णिगोयणिच्चयरा ॥
पत्तेयपइट्ठियरा । थावरकाया अणेयविहा ॥ १३ ॥

अर्थ-पर्याप्त, अपर्याप्त, बादर, सूक्ष्म, नित्य निगोद, इतरनिगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक इस प्रकार स्थावरजीवोंके अनेक भेद हैं-

विगिचउपंचेंदियभे । यदो तसा चउविहा मुणेयव्वा ॥
पज्जत्तियरसण्णीयर- । विभेयदो हुंति बहुभेया ॥१४॥

अर्थ-दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय इसप्रकार चार भेद त्रसजीवोंके जानने चाहियें, पर्याप्त अपर्याप्त, संज्ञी और असंज्ञी आदिक इनके भेद होकर अनेक भेद होजाते हैं-

आउकुलजोणिमग्गण- । गुणजीवोवग्गपाणसण्णाहिं ॥
णाऊण जीवदव्वं - सद्दहणं होय कायव्वं ॥ १५ ॥

अर्थ-आयु, कुल, योनि, मार्गणास्थान, गुणस्थान, उपयोग, प्राण और संज्ञाआदिक जानकर जीव द्रव्य में श्रद्धान करना चाहिये ॥

दुविहा अजीवकाया । दु रूविणो अरूविणो मुणेयव्वा ॥
खंदादिसपएसा । अविभागी रूविणो चदुधा ॥ १६ ॥

अर्थ-अजीवद्रव्यके दो भेद रूपी और अरूपी जानने चाहियें, रूपी चार प्रकार का होता है स्कंध, देश, प्रदेश, और परमाणु-

सयलं मुणेह खंदं । अद्धं देसो पएसमद्धद्धं ॥
परमाणू अविभागी । पुग्गलदव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥ १७ ॥

अर्थ-सकल पुद्गल द्रव्यको स्कंध जानना चाहिये स्कन्ध के आधे को देश, देश के आधे को प्रदेश, और जिसका कोई विभाग न होसके उसको परमाणु जानो-

अइथूलथूल थूलं । थूलं सुहमं च सुहमथूलं च ॥
सुहमं च सुहसुहमं । धराइयं होइ छब्भेयं ॥ १८ ॥

अर्थ–अति स्थूल स्थूल, स्थूल, स्थूल सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म, और सूक्ष्म सूक्ष्म इस प्रकार पृथ्वी आदिक पुद्गल द्रव्य के छै भेद हैं ॥

पुढवी जलं च छाया । चउरिंदियविसयकम्मपरमाणु ॥
छहविहभेयं भणियं । पुग्गलदव्वं जिणिंदेहिं ॥ १९ ॥

अर्थ-पृथ्वी, जल, छाया, चारइन्द्रियों के विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रस, गंध, कर्म और परमाणु इस प्रकार छै भेद पुद्गलद्रव्य के श्रीजिनेन्द्रदेवने कहे हैं।

भावार्थ–ऊपरकी गाथा में स्थूल और सूक्ष्म आदिक छै भेद वर्णन किये हैं उनके यह छै दृष्टान्त हैं–

चउविहमरूविदव्वं । धम्माधम्मांबराणि कालो य ॥
गइठाणुग्गहणलक्खणाणि । तह वट्टणगुणो कालो ॥ २० ॥

अर्थ-अरूपी अजीव द्रव्यके चारभेद हैं धर्म, अधर्म, आकाश, और काल। धर्मका लक्षण गति, अधर्मका स्थित, और आकाश का अवगाहनहै और कालका गुण वर्तना है–

परमट्ठो ववहारो । दुविहो कालो जिणेहि पण्णत्तो ॥
लोयायासपएसे । ठियाणवो मुक्खकालस्स ॥ २१ ॥

अर्थ परमार्थ और व्यवहार यह दो भेद कालके जिनेन्द्रने कहेहैं, परमार्थ कालके अणु, लोकाकाश के प्रदेशों में भरे हुवे हैं।

एदेकारणभूदा । णिच्छयरूवा जिणेहि णिद्दिट्ठा ॥
तीदाणागदभूदो । ववहारो णंतसमऊ य ॥ २२ ॥

अर्थ–वहही परमार्थकाल कारण रूप होकर जब भूत और भविष्यत् रूप होताहै तब वह व्यवहार काल होता है जिसके अनन्त समय हैं, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है–

परिणामिजीवमुत्ता- । एहिं णाऊण दव्वसब्भावं ॥
जिणवयणमणुसरं- । तेहिं थिरमइ होइ कायव्वा ॥ २३ ॥

अर्थ–परिणामीपना, जीव पना, मूर्तिमान् पना से द्रव्य के सद्भावको जानकर जिनवाणी में श्रद्धा करने से अपनी बुद्धिको स्थिर करना चाहिये–

परिणामि जीव मुत्तं । सपएसं एय खित्त किरिया य ॥

णिचं कारण कत्ता । सव्वगदमियरम्हि य पवेसो ॥ २४ ॥

दुण्णि य एयं एयं पंच य तिय एय दुण्णि चउरो य ॥

पंच य एयं एयं मूलस्स हि उत्तरं णेयं ॥ २५ ॥

अर्थ–जीव और पुद्गल यह दो द्रव्य परिणामी हैं, एक जीवद्रव्य चेतनहै और सब द्रव्य अचेतन हैं, एक पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है और सब द्रव्य अमूर्तीक हैं, जीव पुद्गल धर्म अधर्म और आकाश यह पांच द्रव्य प्रदेशी हैं इसही कारण अस्तिकाय कहलाते हैं, धर्म अधर्म और आकाश यह तीन द्रव्य एक एकही हैं. एक आकाश द्रव्यही क्षेत्रवान् अर्थात् आकाश ही अन्य द्रव्यों को क्षेत्र देताहै, जीव और पुद्गल यह दो द्रव्य क्रियावान् हैं, धर्म अधर्म आकाश और काल यह चार द्रव्य नित्य हैं क्योंकि इनमें व्यञ्जन पर्याय नहीं है, पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल यह पांच द्रव्य कारण रूप हैं, जीव द्रव्य करता है, एक आकाश द्रव्य सर्वव्यापी है, यह छहों द्रव्य एक क्षेत्रमें रहनेवाले हैं

सुहुमा अवायविसया । खणखइणो अत्थपज्जया दिठ्ठा ॥

वंजणपज्जाया पुण । थूला गिरगोयरा चिरविवत्था ॥ २६ ।

अर्थ–पर्याय दो प्रकारकी है, एक अर्थ पर्याय और दूसरी व्यञ्जन पर्याय, अर्थ पर्याय सूक्ष्म है शब्दसे नहीं कही जासक्ती है और क्षण क्षणमें बदलती है, व्यञ्जन पर्याय स्थूलहै शब्दसे उस का वर्णन होसक्ताहै और चिरस्थाई है–

परिणामजुदो जीऊ । गइगमणुवलभओ असंदेहा ॥

तह पुग्गलो य पाहण- । पहुइपरिणामदंसणे णाऊ ॥ २७ ॥

अर्थ–जीवपरिणामसंयुक्त होकर नरकस्वर्गादि गतिमें आनेवाला होताहै यह जीवकी व्यञ्जन पर्यायहै और पत्थर मिट्टी आदिक पुद्गल की व्यञ्जन पर्याय हैं–

वंजणपरिणइविरहा । धम्मादीआ हवे अपरिणामा ॥

अत्थपरिणाममासिय । सव्वे वि परिणाभिओ अट्ठा॥ २८ ॥

अर्थ–धर्म, अधर्म, आकाश और कालमें व्यञ्जन पर्याय नहीं होती है इस अपेक्षासे यह चार द्रव्य अप्रणामी हैं परन्तु अर्थ पर्याय की अपेक्षा सबही द्रव्य परिणामी हैं क्योंकि अर्थ पर्याय सब ही द्रव्यों में होती है–

जीवो हु जीवदव्वं । एक्कं चिय चेयणाचुया सेसा ॥
मुत्तं पुग्गलदव्वं । रूवाइविलोयणा ण सेसाणि ॥ २९ ॥

अर्थ-एक जीव द्रव्यमें जीवित पणाहै क्यों अन्य किसी भी द्रव्यमें चेतना नहींहै, एक पुद्गल द्रव्यही मूर्तीकहै क्योंकि अन्य किसी भी द्रव्यका रूप दिखाई नहीं देताहै-

सपएस पंच कालं । मत्तूण पएससखया णेया ॥
अपएसो खलु कालो । पएसबंधच्चुदो जम्हा ॥ ३० ॥

अर्थ-काल द्रव्य के सिवाय अन्य पांचद्रव्य प्रदेशवान् हैं इस कारण प्रदेशी अथवा आस्तिकाय कहलातेहैं काल द्रव्य अप्रदेशी अर्थात् अकाय है क्योंकि उसमें प्रदेश बंध नहीं होता है उसके अणुअलगही अलग रहतेहैं-

धम्माधम्मागासा । एकसरूवा पएस अविउग्गा ॥
विवहारकालपुग्गल- । जीवा हु अणेयरूवा वे ॥ ३१ ॥

अर्थ-धर्म अधर्म और आकाश यह तीन द्रव्य अपना अपना एकही स्वरूप रखते हैं, स्वरूपको बदलते नहीं हैं, व्यवहार काल जीव और पुद्गल यह तीन द्रव्य अनेक रूपधारण करते हैं-

आगासमेव खित्तं । अवगाहणलक्खणं जदो भणियं ॥
सेसाणि पुणोऽखित्ता । अवगाहणलक्खणाभावा ॥ ३२ ॥

अर्थ-एक आकाश द्रव्यही क्षेत्रवानहै क्योंकि अवकाश देना उसका लक्षण कहागया है,अन्य पांच द्रव्य क्षेत्रवान् नहींहै क्योंकि उनका लक्षण अवकाश देना नहींहै-

सकिरिय जीवपुग्गल । गमणागमणाइकिरियउवलंभा ॥
सेसाणि पुण वियाण सु । किरियाहीणा तदाभावा ॥ ३३ ॥

अर्थ-जीव और पुद्गल यह दो द्रव्य क्रियावानहैं क्योंकि इन में हिलना चलना देखाजाताहै, अन्य चार द्रव्य अक्रियहैं क्योंकि उनमें हिलना चलना नहीं है-

मुत्ताजीवं कायं । णिच्चा सेसा पयासिया समये ॥
वंजणपरिणामचुया । इयरे तं परिणयं पत्ता ॥ ३४ ॥

अर्थ-धर्म अधर्म आकाश और काल इन चार द्रव्यों को जैन सिद्धान्त में नित्यकहाहै क्योंकि इनमें व्यञ्जन पर्याय नहीं है, जीव

और पुद्गल इन दो द्रव्यों में व्यञ्जन पर्याय होती है इस हेतु वह परिणामीहैं और अनित्यहैं-

जीवस्सुवयारकरा। कारणभूया हु पंच कायाई॥
जीवो सत्ताभूऊ। सो ताणं ण कारणं होई॥ ३५॥

अर्थ-पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल यह पांचों द्रव्य जीवका उपकार करते हैं इस हेतु कारणहैं, जीवसत्तास्वरूपहै वह किसीकाभी कारण नहीं होताहै-

कत्ता सुहासुहाणं। कम्माणं फलपत्तोयऊ जम्मा॥
जीवो तफ्फलभोया। भोया सेसाण कत्तारा॥ ३६॥

अर्थ-कर्मोंका शुभ अशुभ फल उत्पन्न करनेवाला जीवहीहै और वहही कर्म फलकाभोगनेवाला है, इसकारण कर्ता है अन्य कोई भी द्रव्य न कर्ता है और न भोक्ताहै-

सव्वगदत्ता सव्व। गमयासं गा य सेसगय दव्वं॥
अपरिणामादीहि य। बोहव्वा ते पयत्तेण॥ ३७॥

अर्थ-सर्वव्यापक होने से आकाश को सर्वगत कहतेहैं अन्य कोई भी द्रव्य सर्वगत नहीं है आकाशके अपरिणामी आदिक स्वरूपको यत्नके साथ जानना चाहिये॥

गाणपवेसो वि तहा। गेऊ अगणोरणमगुपवेसेग॥
गियागियभावं पि सया। एगीहूग वि ग मुयंति॥ ३८॥

अर्थ-यह छहों द्रव्य एकही क्षेत्र में अर्थात लोकाकाश में भरे हुवे हैं। भावार्थ-एकही स्थानमें छहों द्रव्य रहते हैं, परन्तु अपने २ भावको कभी नहीं छोड़ते हैं और पृथक् २ जाने जाते हैं-

मिच्छत्ताविरइकसा-। यजोयहेतूहि आसवइ कम्मं॥
जीवम्मि उदहिमज्झे। जह सलिलं छिद्दणावाए॥ ३९॥

अर्थ-मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, और योग के कारण से जीवमें कर्मों का आस्रव होता है, जैसा कि छिद्र के कारण छिद्रवाली किश्तीमें समुद्रके बीच पानी स्रवता है-

अरहंतभात्तियाइसु। सुहोवऊगेण आसवइ पुण्णं॥
विवरीएण दु पावं। णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं॥ ४०॥

अर्थ-अरहंत भक्ति आदिक के द्वारा शुभ उपयोगसे पुण्यका

आस्रव होता है और इसके विरुद्ध क्रिया से पापका आस्रव होता है ऐसा श्रीजिनेंद्रदेवने कहा है-

अण्णोण्णाणुपवेसो । जो जीवपएसकम्मखंधाणं ॥
सो पयडिट्ठिदिअणुभव- । पएसदो चउविहो बंधो ॥ ४१ ॥

अर्थ-जीवके प्रदेश और कर्म के स्कंधों का मिलकर एकमेक होजाना बंधहै, वह बंध चार प्रकार का है, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-

सम्मत्तेहि वएहिं । कोहाइकसायाणिग्गहगुणेहिं ॥
जोगणिरोहेण तहा । कम्मासवसंवरो होई ॥ ४२ ॥

अर्थ-सम्यक्त्व, व्रत और क्रोधादि कषायों का रोकना आदि गुणों के द्वारा मन वचन और कायकी क्रिया को रोकने से संवर होता है अर्थात् कर्मों का आस्रव रुकजाता है-

सविपागा अविपागा दुविहा पुण णिज्जरा मुणेयव्वा ॥
सव्वेसिं जीवाणं पढमा विदिया तवस्सीणं ॥ ४३ ॥

अर्थ-निर्जरा दोप्रकार की जाननी चाहिये, सविपाक और अविपाक, सविपाक सबजीवों को होती है और अविपाक तपस्वी को ही होती है-

जह रुद्धम्मि पवेसे । सुस्सइ सरपाणियं रविकिरणेहिं ॥
तह आसवे णिरुद्धे । तवसा कम्मं मुणेयव्वं ॥ ४४ ॥

अर्थ—यदि तालाब में पानीका आना बंदकरदिया जावे तो तालाब का पानी सूर्य्यकी धूपसे सूखजाता है इसही प्रकार कर्मों का आस्रव रोकदेने पर तपकरनेसे कर्म नाश होजातेहैं-अर्थात् जीव कर्म रहित होजाताहै-

णिस्सेसकम्ममोक्खो । मोक्खो जिणसासणे समुद्दिट्ठो ॥
तम्हि कये जीवो यं । अणुहवइ अणंतयं सोक्खं ॥ ४५ ॥

अर्थ—सर्व कर्मों का नाश होनेको जैन सिद्धान्त में मोक्ष कहा है, ऐसा होने से जीव अनन्त सुखका अनुभव करता है-

णिद्देसं सामित्तं । साहणमहियरणठिदिविहाणाणि ॥
एएहि सव्वभावा । जीवादीया मुणेयव्वा ॥ ४६ ॥

अर्थ-निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, और विधान जीव आदिक द्रव्योंके यह सब भाव जानने चाहियें-

सत्तवि तच्चाणि मए । भणियां जेणागमाणुसारेण ॥

एयाणि सद्दहंतो । सम्माइट्ठी मुणेयव्वो ॥ ४७ ॥

अर्थ-जैन सिद्धान्त के अनुसार मैंने सात तत्त्वोंका वर्णन किया है, जो कोई इन तत्त्वोंका श्रद्धान करता है उसको सम्यक्दृष्टि समझना चाहिये-

णिस्संका णिक्कंखा । णिव्विदिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ॥
उवगूहण ठिदियरणं । वच्छल्ल पहावणा चेव ॥ ४८ ॥

अर्थ-निःशङ्का, निष्काङ्क्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढ दृष्टित्व, उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य और प्रभावना यह सम्यक्त्व के आठ अंग हैं-

संवेऊ णिव्वेऊ । णिंदा गरहा उवसमो भत्ती ॥
वच्छल्लं अणुकंपा । अट्ठगुणा हुंति सम्मत्ते ॥ ४९ ॥

अर्थ-संवेग, निर्वेग, निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य, और अनुकम्पा यह सम्यक्त्व के आठ गुण होतेहैं-

इच्चाइगुणा बहऊ । सम्मत्तविसोहिकारया भणिया ॥
जो उज्जमेदि ऐसु । सम्माइट्ठी जिणक्खादो ॥ ५० ॥

अर्थ-इत्यादिक यह सर्व गुण सम्यक्त्वकी शुद्धि करनेवालेहैं, जो कोई इन गुणोंकी प्राप्तिमें उद्यम करता है उसको श्रीजिनेन्द्र ने सम्यक्दृष्टि कहाहै-

संकाइदोसरहिऊ । णिस्संकाइगुणजुयं परमं ॥
कम्मणिज्जरणहेऊ । तं सुद्धं होइ सम्मत्तं ॥ ५१ ॥

अर्थ-जो कोई जीव शङ्का आदि दोषसे रहित और निःशङ्क आदि गुण संयुक्तहै उसका सम्यक्त्व उत्कृष्ट शुद्ध और कर्मों की निर्जरा करनेवाला होता है-

रायगिहे णिस्संको । चोरो णामेण अंजणो भणिऊ ॥
चंपाए णिक्कंखा । वणिगसुदाणंतमइणामा ॥ ५२ ॥
णिव्विदिगिच्छो राऊ । उद्दायणु णाम रुद्दवरणयरे ॥
रेवइ महुराणयरे । अमूढदिट्ठी मुणेयव्वा ॥ ५३ ॥
ठिदियरणगुणउपत्तो । मागहणयरम्मि वारिसेणो हु ॥
हत्थणापुरम्मि णयरे । वच्छल्लं विण्हुणा रइयं ॥५४॥
उवगूहणगुणजुत्तो । जिणयत्तो तामलित्त णयरीए ॥

बज्जकुमारेण कथा। पहावणा चेव महुराए॥ ५६॥

अर्थ–राज गृह नगरमें अंजन चोर निःशंकित अंगका पालने वाला प्रसिद्ध है, चंपा नगरी में अनंत मती एक बनिये की पुत्री निष्कांक्षा अंग पालने में विख्यात है, रौद्रवरनगरमें ओदायन राजा निर्विचिकित्सा अंग पालने में और मथुरा नगर में रेवती रानी अमूढ़ दृष्टित्व अङ्ग पालने में मशहूर है, मागध नगर में वारिषेण राजा स्थिति करणके पालने में और हस्तिनापुर नगरमें विष्णु कुमार वात्सल्य अंग पालनेमें विख्यात है, ताम्रलिप्त नगर में जिनदत्त सेठ उपगूहण अंगके पालनेमें और मथुरा नगरमें बज्र कुमार प्रभावना अंगके पालने में मशहूरहै–

पंरिसगुण अट्ठजुयं। सम्मत्तं जो धरेइ दिढचित्तो॥

सो हवइ सम्मदिट्ठी। सद्दहमाणो पयत्थे य॥ ५१॥

अर्थ–पदार्थों में श्रद्धान रखनेवाला जो कोई उपरोक्त अष्टगुण संयुक्त और दृढ़चित्त होकर सम्यक्त्व को अंगीकार करता है वह सम्यक्दृष्टि होता है–

पहलीप्रतिमादर्शनश्रावक।

पंचुंबरसहियाई। सत्तवि विसणाइ जो विवज्जेई॥

सम्मत्तविसुद्धमई। सो दंसणसावऊ भणिऊ॥ ५७॥

अर्थ–पांचउदम्बर और सात व्यसन को जो कोई सम्यक्दृष्टि त्याग करता है उसको दर्शन श्रावक कहते हैं अर्थात् वह पहली प्रतिमाका धारी होताहै–

उंबरवडपीपलपियपाबरसंधाणतरुपसूणाइं॥

णिच्चं तससंसिद्धाइ ताइं परिवज्जियव्वाइं॥ ५८॥

अर्थ–गूलर, बड़, पीपल, पिलखन, और अंजीर यह पांच फल तथा संधाणा,(अचार)और वृक्षों के फूल इन सबमें त्रसजीवों की निरंतर उत्पत्ति होती है इसी वास्ते यह सब त्यागने योग्य हैं–

जूयं मज्जं मंसं। वेसा पारद्धि चोर परयारं॥

दुग्गइगमणस्सेदा। णि हेउभूदाणि पावाणि॥ ५९॥

अर्थ-जूआ, शराब, मांस, वेश्या, शिकार, चोरी, और परस्त्री यह सात कुव्यसन दुर्गतिमें लेजानेवाले पाप हैं–

जूयं खेलंतस्स हु । कोहो माया य माणलोहा य ॥
एए हवंति तिव्वा । पावइ पावं तदो बहुलं ॥६०॥

अर्थ-जूआ खेलने से मान, माया, लोभ, क्रोध तीव्र होजाते हैं जिससे अधिक पाप उत्पन्न होताहै ॥

पावेण तेण जरमर-। णवीचिपउरम्मि दुक्खसलिलम्मि ॥
चउगइगमणावत्त- । म्मि हिंडइ भवसमुद्दम्मि ॥ ६१ ॥

अर्थ-इन पापों के कारण यह ऐसे संसार समुद्र में भ्रमता है जिसमें बुढ़ापा और मरण आदिक अनेक रोग और अत्यंत दुःख हैं और जहाँ चतुर्गति में घूमना पड़ताहै ॥

तत्थवि दुक्खमणंतं । छेयणभेयणविकत्तणाईणं ॥
पावइ सरणविरहिऊं । जुव्वस्स फलेण सो जीवो ॥६२॥

अर्थ-जूआ खेलनेवाला शरणरहित होकर जूआ खेलने के फल के कारण इस संसारमें छेदन भेदन कतरन आदिक अनंत दुःख भोगता है-

ण गणइ इट्ठमित्तं । ण गुरुं ण मायरं य पियरं वा ॥
जूयंधो ण मयणइ । जह कुणइ अवज्जं बहुलं ॥६३॥

अर्थ-जूआ खेलने में अन्धा हुआ पुरुष इष्टमित्र को गुरु को माता को वा पिता को कुछ नहीं गिणता है इसकारण स्वच्छन्द होकर बहुत पाप करता है-

सजणे य परजणे वा । देसे सव्वत्थ होइ णिल्लज्जो ॥
मायावि ण विस्ससई । बच्चइ जूवं रमंतस्स ॥ ६४ ॥

अर्थ- जूआ खेलनेवाला स्वजनों में परजनोंमें देशमें परदेशमें सबही जगह निर्लज्ज होताहै उसकी बात का विश्वास उसकी माता भी नहीं करती है-

अग्गिविसचोरसप्पा । दुक्खं थोवं कुणंति इहलोए ॥
दुक्खं जणवइ जूयं । णरस्स भवसयसहस्सेसु ॥ ६५ ॥

अर्थ-इस लोक में आग, जहर, चोर और साँप तो कमती दुःख देनेवाले हैं परन्तु जूआ खेलनेसे मनुष्य को सैकड़ों और हजारों भव में दुःख उठाने पड़ते हैं-

अक्खेहि णरो रहिऊं । ण मुणइ सेसिंदिएहि वेयइ ॥

जूयंधो ण य केणवि। जाणदि संपुण्णकर णोवि ॥६६॥

अर्थ-जो आँखों का अन्धा है वह यद्यपि नहीं देखसक्ता है परन्तु अन्य इन्द्रियों से तो कुछ जान लेता है, और जो कोई जूआ खेलने में अन्धा होरहा है वह पांचों इन्द्रियोंके होते हुवे भी कुछ नहीं जानता है-

अलियं करेइ सवहं। जंपइ मोसं भणेइ अइदुट्ठं॥
पासम्मि बहिणिमायं। सिसुं पि हणेइ कोहंधो ॥ ६७॥

अर्थ-वह उलटी २ सौगन्द खाता है, झूठी बकवाद मारता है, दुष्ट वचन बोलता है, और क्रोधमें अन्धा होकर छोटी बहन, माता और बालकको भी मारने लगता है-

ण य भुंजइ आहारं। णिद्दं ण लहेइ रत्तिदिण्णंति॥
कत्थवि ण कुणेइ रइं। अत्थइ चिंताउरो णिच्चं॥ ६८॥

अर्थ-वह नित्य चिंतावान रहता है, न खाना खाता है और न रातदिन सोता है और न किसीसे प्रीति करता है-

इच्चेवमाइ बहुले। दोसे णाऊण जूयरमणम्मि॥
परिहरियव्वं णिच्चं। दंसणगुणजुयमहंतेण॥ ६९॥

अर्थ-जूआ खेलनेमें इस प्रकार महान् दोष जानकर दर्शन प्रतिमावाले उत्तम पुरुषको जूएका सदाही त्याग करना चाहिये-

मज्जेण णरो अवसो। कुणेइ कम्माणि णिलज्जाइं॥
इहलोए परलोए। अणुहवइ अणंताइ दुक्खाइ॥ ७०॥

अर्थ-शराब पीने से मनुष्य स्वच्छन्द होकर निर्लज्ज क्रिया करता है और इस लोक तथा परलोकमें अनन्त दुःख उठाता है-

अइलंघिय चिट्ठो। पडेइ रत्थायंगणे मत्तो॥
पडियस्स सारमेया। वयणं विलिहंति जिब्भाय॥ ७१॥

अर्थ-शराब पीनेवाला रीतिको उल्लंघन करके बेसुध होकर रस्ते में गिरपड़ता है और उसके शरीरको कुत्ते चाटने लगते हैं-

उच्चारं पस्सवणं। तत्थेव कुणंति तं समुल्लवई॥
पडिवुवि सुरा मिट्ठो। पुणो वि मे देइ मूढमई॥ ७२॥

अर्थ-कुत्ते उसके मुंहमें मूतते हैं और वह मूर्ख उस मूतका स्वाद लेकर कहता है कि बहुत मीठी शराब है और भी दे-

जं किंचि तस्स दव्वं । अजाणमाणस्स हिंय परेहिं ॥
लहिऊण किंचि सण्णं । इदो तदो धवाइ खलंतो । ७३ ॥

अर्थ-उस बेसुध पड़े हुवे का द्रव्य अन्य लोग हर लेजाते हैं, जब उस को कुछ होश आती है तो गिरता पड़ता लोगों के पीछे दौड़ता है

जेण हु मज्झ दव्वं । गहियं दुट्ठेण सेज्ज मो कुद्धो ॥
कहिं जाय सो जिवंतो । सीसं छिंदामि खग्गेण ॥ ७४ ॥

अर्थ-और इस प्रकार बकता जाता है कि जिस बदमाश ने मेरा द्रव्य लिया है और मुझको क्रोध उपजाया है वह जीता बचकर कहां चला जायगा, मैं उसका सिर खड्ग से काटूंगा-

एवं सो गज्जंतो । कुविऊ गंतूण मंदिरं णिययं ॥
छित्तूण लउडि सहसा । रुट्ठो भंडाई फोडेई ॥ ७५ ॥

अर्थ-इस प्रकार वह क्रोध में गरजता हुवा अपने घरजाता है और खिजाहुवा लाठीसे घरके बर्तनों को फोड़ता है-

णिययं पि सुयं बहिणिं । अणिच्छमाणं बला विधंसेइ ॥
जंपइ अज्जनजिज्जं । ण विजाणइ किंचि य पमत्तो ॥ ७६ ॥

अर्थ-वह अपने बेटेको बहन को और अन्य भी सब को जिनको अपनी इच्छा के अनुकूल नहीं समझता है मारने लगता है और ऊलपटांग बकने लगता है, वह बेसुध हुवा कुछ नहीं जानता है कि क्या कररहा हूं-

इयअवराइवि बहुसो । काऊण बहू णिलज्जकज्जाणि ॥
अणुबंधइ बहु पावं । मज्जस्स वसंगदो संतो ॥ ७७ ॥

अर्थ-शराबके नशे के बश होकर इत्यादिक अनेक निर्लज्जकार्य करनेसे वह बहुत पाप बंध करता है-

पावेण तेण बहुसो । जाइजरामरणसावयाइण्णे ॥
पावइ अणंतदुक्खं । पडिऊ संसारकंतारे ॥ ७८ ॥

अर्थ-इन पापों के कारण वह संसार वनमें पड़कर जन्म जरा मरण आदिक अनन्त दुःख उठाता है-

एवं बहुप्पयारं । दोसं णाऊण मज्जपाणम्मि ॥
मणवयणकायकयका-।रिदाणुमोएहि वज्जिज्जो ॥ ७९ ॥

अर्थ-शराब पीनेमें इस प्रकार बहुत से दोष जानकर मन वचन

काय और कृतकारित अनुमोदना अर्थात् सर्वप्रकार से इसका त्याग करना चाहिये।

जह मज्जं तह य महू। जणयदि पावं णरस्स अइबहुअं॥
असुइव्व णिंदणीयं। वज्जेयव्वं पयत्तेण॥ ८०॥

अर्थ-शराब के समान शहदसे भी मनुष्यको बहुत पाप होता है इस अपवित्र और निंदनीय वस्तुका त्याग यत्न के साथ करना चाहिये,

दट्ठूण असणमज्झे। पडियं जइ मच्छियंपि णिट्ठिवई॥
कह मच्छियंडयाणं। णिज्जासं णिग्घिणो पिबई॥ ८१॥

अर्थ-यदि भोजन में मक्खी पड़ी हुई नजर आजाती है तो मनुष्य उस भोजनसे घृणा करताहै, परन्तु नहीं मालूम मक्खियों के अंडों के रसको अर्थात् शहद को बिना घृणा किये कैसे पीलेता है-

भो जिब्भिंदिय लुद्धया। ण मक्खियरं पलो एह॥
किं मक्खियणिज्जासं। महु प्पवित्तं भणंति जदो॥ ८२॥

अर्थ-हे जिह्वा लंपट तू मक्खियोंको मत खा-तुम शहदको जो मक्खियों का रसहै किस प्रकार पवित्र कहतेहो-

लोगे वि सुप्पसिद्धं। बारहगामाइ जो दहइ अदऊ॥
तत्तो सो अहियपरो। पाविट्ठो जो महुं हणई॥ ८३॥

अर्थ-लोकमें भी यह कहावत प्रसिद्ध है कि जो निर्दयी १२ ग्रामों को फूँकता है उससे भी अधिक पापी वह है जो शहद के छत्त को तोड़ता है-

जो अवलेहइ णिच्चं। णिरयं सो जाइ णत्थि संदेहो॥
एवं णाऊण फुडं। वज्जइदव्वं महुं तम्हा॥ ८४॥

अर्थ-जो नित्य शहद खाताहै वह अवश्य नरकमें जाता है इसमें कोई संदेह नहीं है, ऐसा जानकर शहद का त्याग करना चाहिये-

मंसं अमेज्झसरिसं। किमिकुलभरियं दुगंध बीभच्छं॥
पाएणावि ण छिवेयं। ण तीरए तं कहं भोत्तुं॥ ८५॥

अर्थ-मांस अमेध्य अर्थात् विष्टा के समान है, बहुत जातिके कीड़ोंकी खानहै, दुर्गन्धि युक्त है, और घिनावना है, वह पैरों से

भी छूने योग्य नहींहै और न पास आने योग्य है, वह मांस खाने योग्य कैसे होसक्ता है–

मंसासणेण वड्ढइ । दप्पो दप्पेण मज्जमहिलसइ ॥
जूयंपि रमइ तोसं । (पिविणए?) इ पाउणइ दोसे ॥ ८६ ॥

अर्थ–मांस खानेसे उन्माद होता है, उन्मादी शराबकी इच्छा करता है और जूआ खेलता है इस हेतु इससे यह दो दोष भी उत्पन्न होते हैं–

लोइयसत्थम्मि वि व- । णियं जहा गयणगमणो वि ॥
भुवि विप्पा मंसासणेण । पडिमो तह्मा वज्जियं मंसं ॥ ८७ ॥

अर्थ–लौकिकशास्त्र में भी ऐसा वर्णन है कि कोई महान् ब्राह्मण आकाश में जाताथा परन्तु मांसके खानेसे जमनिपर गिरपड़ा, इस कारण मांसका त्याग करना चाहिये–

कारुयाकिरायचंडा- । लडोंबपारसियाणमुच्छिट्ठं ॥
सो भक्खेइ जो सह- । वसई एयरत्ति पि वेस्साई ॥ ८८ ॥

अर्थ–जो कोई एकरात भी वेश्या से भोग करता है वह धोबी किरात चांडाल डोंबारी पारसी आदि नीच लोगों की झूंठ खाताहै–

रत्तं णाऊण णरं । सव्वस्सं हरइ वचणसएहिं ॥
काउण मुंचइ पच्छा । पुरुसं चम्मट्ठिपरिसेसं ॥ ८९ ॥

अर्थ–वेश्या मनुष्य को अपने ऊपर आसक्त जानकर सैकड़ों ठगबाजी से उसका सर्वस्व हर लेतीहै और जब उस पुरुष में चाम और हाड़ ही बाकी रहजाताहै तब उसको छोड़ देती है–

पभणइ पुरऊं एय- । स्स सामि मुत्तूण णत्थि मो अवरो ॥
उच्चइ अवरस्स पुणो । करेइ चाटूणि बहुयाणि ॥ ९० ॥

अर्थ–एक पुरुषसे वह कहती है कि तुम्हारे सिवाय मेरा कोई स्वामी ही नहीं है इसीही प्रकार दूसरे मनुष्य से भी अनेक चाल की बातें बनाती है–

माणी कुलजो सूरो । वि कुणई दासत्तणं पि णीयाणं ॥
वेस्साकएण बहुगं । अवमाणं सहइ कामंधो ॥ ९१ ॥

अर्थ–कामान्ध पुरुष कैसा ही मानीहो कुलवान हो शूरवीर हो परन्तु उसको नीच पुरुषों का दास बनना पड़ता है और वेश्याके कारण बहुत अपमान सहने पड़तेहैं ॥

जे मज्जमंसदोसा । वेस्सागमणे वि हुंति ते सव्वे ॥
पावंपि तत्थ दिट्ठं । पावइ णियमेण सविसेसं ॥९२॥

अर्थ-शराब और माँस में जो दोष हैं वह सब दोष वेश्यागमन में भी प्राप्त होते हैं, इसकारण वेश्यागमन में वह पापभी होते हैं और उनसे अधिक भी होते हैं-

पावेण तेण दुक्खं । पावइ संसारसायरे घोरे ॥
तम्हा परिहरियव्वा । वेस्सा मणवयणकाएहिं ॥ ९३ ॥

इन पापोंसे संसार सागरमें घोर दुःख उठाने पड़ते हैं, इसकारण मन वचन कायसे वेश्या का त्याग करना चाहिये-

सम्मत्तस्स पहाणो । अणुकंवा वण्णिओ जम्हा ॥
पारद्धिरमणसीलो । सम्मत्तविराहओ तम्हा ॥९४॥

अर्थ-सम्यक्त्व का प्रधान कारण अनुकम्पा अर्थात् दयाहै इस कारण शिकार खेलनेवाला सम्यक्त्व का नाश करनेवाला है-

दट्ठूण मुक्ककेसं । पलायमाणं तहा पराहुत्तं ॥
रदधरियतिणं सूरा । कयापराहं पि ण हणंति ॥ ९५ ॥

अर्थ-जो बालों को छोड़े हुवे भागताहै और पराधीन होकर दांतों में तिनका लिये हुये है ऐसे जीव को देखकर चाहे वह अपराधी भी है परन्तु शूरवीर पुरुष उसको नहीं मारताहै—

णिच्चं पलायमाणो । तिणचारी तह णिरावराहो वि ।
कह णिग्घणो हणिज्जइ । आरण्णणिवासिणो विमए ॥ ९६ ॥

अर्थ—नित्य भागजानेवाले, घास खानेवाले, बेकसूर, और जंगलमें रहने वाले गरीब पशुको शिकार करनेवाला क्यों मारताहै-

गोबंभणमहिलाणं । विणिवाए हवइ जह महापावं ॥
तह इयरपाणिघाए । वि होइ पावं ण संदेहो ॥ ९७ ॥
गोबंभणत्थिपावं । परिहरमाणस्स होइ जह धम्मो ॥
सव्वेसिं जीवाणं । दयालुणा किं ण सो जाये ॥ ९८ ॥

अर्थ-गौ, ब्राह्मण, और स्त्री को मारनेसे जो महान्पाप होता है वहही अन्य जीवों के मारने से भी होताहै, इसमें कोई संदेह नहीं, जिस प्रकार गौ, ब्राह्मण और स्त्री की हत्या न करने से धर्म होताहै इसही प्रकार अन्य जीवोंपर दया करनेमें भी धर्म क्यों नहीं होताहै-

महुमज्जमंससेवी । पावइ पावं चिरेण जं घोरं ॥
तं एयदिणे ण पुरिसो । लहेइ पारद्धि देसविरएण ॥ ९९ ॥

अर्थ-चिरकाल तक शहद, शराब, और मांसका सेवन करनेसे जितना घोर पाप होता है उतनाही घोर पाप गृहस्थी श्रावकको एक दिन शिकार खेलनेसे होताहै-

संसारम्मि अणंतं । दुक्खं पावेदि तेण पावेण ॥ १०० ॥
तम्हा विवज्जियव्वा । पारद्धी देसविरएण ॥

अर्थ-शिकार खेलने के पापसे संसार में अनन्त दुःख होता है इस कारण गृहस्थी श्रावक को शिकार का त्याग करना चाहिये-

परदव्वहरणसीलो । इहलोए असाय बहुलाओ ॥
पाउणइ जायणाओ । ण कया वि सुहं विलोएदि ॥ १०१ ॥

अर्थ-परद्रव्य हरनेवाला अर्थात् चोरी करनेवाला इस लोकमें बहुत दुःख उठाता है और कभी भी सुख नहीं देखता है-

हरिउं परस्स धणं । चोरो परिवेवमाणसव्वंगो ॥
चइऊण णिययगेहं । धावइ उपहेण संतत्तो ॥ १०२ ॥

अर्थ-चोर पराये धन को हरकर डरकेमारे थरथर कांपता है और अपने घरको छोड़कर त्रास भोगता हुआ इधर उधर भागता फिरताहै

किं केण वि दिट्ठो हं । ण वेदि हिदएण धगधगंतेण ॥
ल्हुक्कई पलायमाणो । खलइ णिद्दं ण लहेइ भयविट्ठो ॥ १०३ ॥

अर्थ-क्या मुझे किसीने देख लियाहै, नहीं देखा नहीं है, इस प्रकार उस का हृदय कांपता रहता है, वह लुक छिपकर भागता रहता है और भयके कारण उसको नींद नहीं आती है-

ण गणेइ मायबप्पं । गुरुमित्तं सामिणं तवस्सि वा ॥
परबलेण हरइ छलेण । किंचिण्णं किंपि जं तेसिं ॥ १०४ ॥

अर्थ-माता, बाप, गुरु, स्वामी, और साधु को भी चोर कुछ नहीं गिनता है, उनका माल भी जो कुछ मिलता है जबरदस्तीसे या छलसे हरलेता है-

लज्जा तहाभिमाणं । जससीलविणासमादणासं च ॥
परलोयभयं चोरो । अगणंतो साहसं कुणइ ॥ १०५ ॥

अर्थ-लज्जा, अभिमान, यश, शील, आत्मा, और परलोक भयका नाश करनेसे चोर अनगणित साहस करताहै-

हरमाणे परदव्वं । दठ्ठूणारक्खियाहि तो सहसा ॥
रज्जूहि बंधऊणं । घिप्पइ सो मोरबंधेण ॥१०६॥
हिंडाविज्जइ टिंटे । रत्थासु चडाविऊण खरपुठ्ठिं ॥
वित्थारिज्जइ चोरो । एसो त्ति जणस्स मज्झम्मि ॥ १०७ ॥
अण्णो वि परस्सं जो । हरेइ सो एरिसं फलं लहई ॥
एवं भणिऊण पुणो । णिज्जइ पुरबाहिरे तुरियं ॥ १०८ ॥
णेत्तुद्धारं अहवा । पाणिपाय गहणं णिसुंभणं ॥
अहवा जीवंतस्स वि । मूलविराहणं किरेइ खलेहि ॥ १०९ ॥

अर्थ-चोरको पराया द्रव्य हरते हुये यदि चौकीदार देखलेताहै तो वह उसको पकड़कर, रस्सी से बांधकर, व कमरसे जकड़ कर और गधेपर चढ़ाकर गली २ में घुमाता हुवा लोगोंमें यह कहता है कि देखो चोरका ऐसा हाल हुवा करताहै, और भी जो कोई पराया माल हरेगा उसका भी यहही हाल होगा, इस प्रकार कहता हुवा तुरंत उसको गांवसे बाहर लेजाताहै, और उसकी आंख फोड़ देताहै या हाथ पैर काटकर उसको विरूप कर देता है या जानसेही मारडालता है-

एवं पिच्छंतो वि हु । परदव्वं चोरयाइ णिग्घिणा ॥
ण मुणंति किमपि सहियं । पेच्छह हो मोहमाहप्पं ॥ ११० ॥

अर्थ-इस प्रकारकी दशा देखते हुवे भी जो मनुष्य पराये मालको चुराकर ग्रहण करते हैं वह नहीं जानते हैं कि अपना हित क्याहै, अहो इस मोहके माहात्म्य को देखो-

परलोए वि य चोरो । चउगइसंसारसायरे णिम्मग्गो ॥
पावइ दुक्खमणंतं । तेयं परिवज्जय तम्हा ॥ १११ ॥

अर्थ-चतुर गति रूप संसारसागर में डूबकर चोर परलोकमें भी अनन्त दुःख उठाताहै; इस कारण चोरीका त्याग करना चाहिये

दट्ठूण परकलत्तं । णिब्बुद्धी जो करेइ अहिलासं ॥
ण य किंपि तत्थ पावइ । पावं एमेव अज्जेई ॥ ११२ ॥

अर्थ-पराई स्त्रीको देखकर निर्बुद्धि पुरुष उस स्त्रीकी अभिलाषा करताहै परन्तु वह स्त्री तो उसको मिलती नहीं और पापबंध अवश्य होजाता है-

णिस्सासइ कंदइ वावइ खिवसिरं हणइ महीयले पडइ ॥
परमहिलमलभमाणो । असप्पलावं पि जप्पेई ॥ ११३ ॥

अर्थ-परस्त्री का अभिलाषी पुरुष लंबे २ सांस लेताहै, रोताहै, गाताहै, अथवा सिर फोड़ता है, धरती पर गिरताहै, झूठी बकवाद भी करने लगताहै-

चिंतेइ मं किमिच्छइ । ण वेइ सा केण वा उवाएण ॥
आणेमि कस्स वि कहेमि ! ण वेति चिंताउरो सददं ॥ ११४ ॥

अर्थ-वह सोचमें पड़ा हुवा विचार करता रहता है कि वह स्त्री मेरी चाहना करतीहै कि नहीं, वह मेरे वशमें नहीं आतीहै मैं क्या उपाय करूं, उसको किसतरह लाऊं, किसीसे कहूं या न कहूं-

ण कुत्थ वि कुणइ रइं । मिट्ठं मि य भोयणं ण भुंजेई ॥
णिद्दं पि अलहमाणो । इत्थीविरहेण संतत्तो ॥ ११५ ॥

अर्थ-स्त्रीके विरहसे संतप्त हुवा वह कहीं भी चित्त नहीं लगाता है, मीठा अर्थात् स्वाद भोजन भी उससे नहीं खाया जाता है और उसको नींद भी नहीं आतीहै-

लज्जा कुलकमं छं- । डिऊण मज्जाइभोयणं किच्चा ॥
परमहिलाणं चित्तं । अमुणंतो पत्थणं कुणइ ॥ ११६ ॥

अर्थ-वह लज्जा और अपने कुलकी मर्यादा को छोड़कर और शराब आदिक पीकर पराई अनजान स्त्री से भी प्रार्थना करताहै

णेच्छंति जइ वि ताऊ । उवयारसयाणि कुणई सो ॥
तह वि णिव्भच्छिज्जंतो । पुण अप्पाणं झूरइ विलक्खो ॥ ११७ ॥

अर्थ-वह स्त्री उसको नहीं चाहती है अर्थात् उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं करती है तो भी सैकड़ों बातें बनाता है और झिड़के खाता है और झुरता है-

अह भुंजइ परमहिलं । अणिच्छमाणं बला धरेऊण ॥
किं तत्थ हवइ सुक्खं । पच्चेल्लिउ पावइ दुक्खं ॥ ११८ ॥

अर्थ-जब परस्त्री इस प्रकार राजी नहीं होती है तो जबरदस्ती करताहै, परन्तु ऐसी दशा में क्या आनन्द मिलताहै और पीछे दुःख उठाना ही पड़ता है।

अह का वि पावबहुला । असई णिण्णासिऊण णियसीलं ॥

सयमेव पीड़ियाऊ । उवरोहवसेण अप्पाणं ॥ ११९ ॥

जइ देवि तत्थ सुणहर- । खंडदेउलयमज्झम्मि ॥

सचितो भयभीदो । सोक्खं किं तत्थ पाउणई ॥ १२० ॥

अर्थ-यदि कोई दुराचारणी पापिनी स्त्री अपने शील का नाश करके कामीपुरुष की प्रार्थना को मंजूर करले और किसी खाली मकान या किसी टूटे फूटे मंदिर आदिक में अपने आपेको उस कामी पुरुष को सोंप भी देवे तो वहाँ वह कामीपुरुष चिंतावान् और भयभीत हुवा क्या आनन्द उठा सक्ताहै-

सोऊण किं पि सद्दं । सहसा परिवेवमाणसव्वंगो ।

छिल्पइ पलाइ लुकइ । चउद्दिसं णियइ भयभीऊ ॥ १२१ ॥

अर्थ-वह किसी प्रकारकी भी जरासी आवाज सुनकर घबराकर कांपने लगताहै, छिपता है, भागता है और भयभीत और बेचैन होकर चारोंतरफ देखताहै—

जइ पुण केण वि दीसइ । णिज्जइ तो बंधिऊण णिवगेहं ॥

चोरस्स णिग्गहं सो । इत्थंइ पाउणइ सविसेसं ॥ १२२ ॥

अर्थ-इसपर भी यदि कोई देखलेता है तो उसे बांधकर राज दरबार में लेजाता है, वहां वह चोर से भी अधिक दण्ड पाता है-

पेच्छह मोहविडंवणा । लोगो दट्ठूण एरिसं दोसं ॥

पेच्छसं तह वि खलो । परत्थिमहिसलादि दुक्खिणो ॥ १२३ ॥

अर्थ-मोह की विडंबना को देखो कि लोकमें दोषों के इदयको देखतहुवे भी दुष्ट लोग परस्त्री की अभिलाषा करते हैं-

परलोयम्मि अणंतं । दुक्खं पाउणादि भवसमुद्दम्मि ॥

परयारो परमहिला । तम्हा तिविहेण वज्जिजज्जा ॥

अर्थ-परस्त्री सेवन से जन्मान्तरमें भी इस संसारसागरमें अनन्त दुःख उठाने पड़ते हैं इसकारण मन वचन कायसे परस्त्री सेवनका त्याग करना चाहिये-

रज्जब्भंसं वसणं । बारहसंवच्छराणि वणवासं ॥

पत्तो तहावमाणं । जूएण जुहिट्ठिरो राया ॥ १२५ ॥

अर्थ-जूआ खेलनेसे युधिष्ठिर राजा ने राज्य खोया बारह वर्ष का वनवास लिया और अपमान उठाया-

उज्जाणम्मि रमंता । तिसाभिभूया जलेचि णाऊण ॥
पविऊण जुण्णमज्जं । णट्ठा ते जादवा तेण ॥ १२६ ॥

अर्थ-जंगल में क्रीडा करते हुये प्यास के वश होकर यादवों ने पुरानी उतरीहुई शराबको पानी समझ कर पीलिया और उसही के कारण नष्टहोगये-

मंसासणेण लुद्धो । वगरक्खो एवचक्कणयरम्मि ॥
रज्जाऊ पयभट्ठो । अयसेण मऊ गयो णरयं ॥ १२७ ॥

अर्थ-एकचक्र नाम नगरमें बकासुर राजाने मांस खाने में मुग्ध होकर राजपद भ्रष्ट किया और अपयश में मरकर नरकगया-

सव्वत्थ णिवुणवुद्धी । वेसासंगेण चारुदत्तो वि ॥
खइऊण धणं पत्तो । दुक्खं परदेसगमणं वा ॥ १२८ ॥

अर्थ-चारुदत्त सेठने जो सब प्रकार चतुर था वेश्यासंगति के कारण अपना सारा धन नष्ट किया और परदेश जाकर अनेक दुःख भोगे-

होऊण चक्कवट्टी । चउदहरयणाहिवत्तं संपत्तो ॥
मरिऊण बम्भदत्तो । णरयं पारद्धिरमणेण ॥ १२९ ॥

अर्थ-ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती राजा जो १४ रत्ननिधान था शिकार खेलने के पापसे नरकमें गया-

णासापहारदोसे- । ण दंडणं पाविऊण सिरिभूई ॥
मरिऊण अट्टझाणे- । ण हिंडिऊ दीहसंसारे ॥ १३० ॥

अर्थ-श्रीभूतने चोरीके दोषमें दंड पाया और आर्त्तध्यान में मर कर संसार में बहुत बार रुलता फिरा-

होऊण खयरणाहो । वियक्खणो अद्धचक्कवट्टी वि ॥
मरिऊण गऊ णरयं । परत्थिहरणेण लंकेसो ॥ १३१ ॥

अर्थ-लंकाका राजा रावण जो विद्याधरों का सरदार तथा बहुत चतुर और अर्द्धचक्री था परस्त्री हरनेके कारण नरक में गया-

एदे महाणुभावा । दोसं एक्केक्कविसणसेवाऊ ॥
पत्ता जो पुण सत्त वि । सेवइ वणिज्जए किं सो ॥ १३२ ॥

अर्थ-ऐसे २ महान् पुरुष एकही एक व्यसन के सेवन करने से दुर्गतिमें गये, जो सातोंही व्यसन करतेहैं उनकी बाबत क्याकहाजावे

मानासिक और शारीरक दोनो प्रकारके दुःख उठाता हुवा वह क्रोध में आकर कहताहै -

जइ वा पुव्वम्मि भवे । जूयं रमियं मए मदवशेन ॥
तुम्हं को अवराहो । कोहवला जेण हं हणई ॥ १४६ ॥

अर्थ—यदि मैने पूर्वजन्म में मदके वशहोकर जूआ खेलाहै तो मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है जिसके कारण तुम क्रोध में आकर मुझ मारतेहो—

एवं भणिए णिहुण । मुथा रूढेहि अग्गिकुंडम्मि ॥
पज्जालयम्मि णिहिणो । अभंगाउ अंगेसु ॥ १४७ ॥

अर्थ-ऐसा कहनेपर वेनारकी क्रोधमें आकर उसको पकड कर अग्निकुंड में डाल देतहैं, वहां उसका सारा शरीर अग्निमें झुलसा जाता है—

तत्तो णिस्सरमाणं । ददठूण तासही अएणकुंतेहि ॥
पिल्लेऊण रडंतं । तत्थेव छुहंति अदया य ॥ १४८ ॥

अर्थ-अग्निकुंडसे बाहर निकलते को देखकर वे निर्दयी नारकी त्रास देनेके वास्ते उसको मारते हैं और रोते हुवे को अग्निकुंडमें डालदेते हैं—

हा मुयह मम परिहर । पुणो वि ण करोमि एरिसं पावं ॥
दंताहिं अंगुलिऊं । धरेइ करुणं पुणो पुणो रुवई ॥ १४९ ॥

अर्थ-हाय मुझे छोडदो, मुझको मत मारो, मैं यह पाप फिरनहीं करूंगा, वह करुणा के वास्ते दाँतों में उँगलीदबाता है और बार बार रोता है-

ण मुयंति तह वि पावा । पेच्छह लीलाए कुणइ जं जूवं ॥
तं पावं विलवंतो । एयहदुक्खेहिं णित्थरो हं हो ॥ १५० ॥

अर्थ-तौ भी वे पापी नारकी उसको नहीं छोडते हैं और कहते हैं कि देख जुआ क्या २ लीला करता है, जब तक यह तेरा पाप विनाश नहीं होगा तब तक तू दुःखसे नहीं छूटेगा-

तत्तो पलायऊण । कह वि पमाएण दद्धसव्वंगो ॥
गिरिकंदम्मि सहसा । पविसइ सरणंत्ति मण्णंतो ॥ १५१ ॥

अर्थ-यदि नारकियों की किसी बेपरवाही से वह शरीर झुलसा हुवा अग्निकुंड में से भाग निकलता है तो शरण ढूंढता हुवा किसी पहाडकी गुफा में जा घुसता है--

तत्थ वि पडंति उवरिं। सीलाउ ततो हि चुण्णिउ संतो॥
गलमाणरुहिरधारो। रहिऊण खणं ततो णिग्गई॥१५२॥

अर्थ-वहांभी पत्थर गिर२कर उसके सिरपर पड़ते हैं,वह पिस-जाता है और उसके शरीर में से खूनकी धारा बहने लगतीहै इस कारण क्षणभर रहकर वहांसे भी निकलता है-

णेरइयाण सरीरं। कीरइ जइ तिलपमाणखंडाइ॥
पारदरसवल्लगई। अपुण्णकालम्मि ण मरेई॥१५३॥

अर्थ-नारकियों के शरीरके यदि तिलके बराबर भी टुकड़े करादिये जावें तौ भी वह पारेकी समान तुरंत मिलजाते हैं, आयु पूर्ण होने से पहले नारकी नहीं मरता है-

ततो पलायमाणो। रुंधइ सो णारएहि दट्ठूण॥
पाविज्जइ विलवंतो। अयसं वय कलयलं तत्तं॥१५४॥

अर्थ-वह गुफामें से निकलकर भागता हुवा नारकियोंको देख कर रोनेलगता है, नारकी उसको पकड़ कर जबरदस्ती तपे हुवे लोहे का रस पिलाते हैं-

पच्छादिज्जइ जतो। पीयं मज्जं महुं च पुव्वभवे॥
तं पावफलं पत्तं। पिबेहि अयकलयलं घोरं॥१५५॥

अर्थ-वे उसको याद दिलाते हैं कि पूर्वजन्म में तूने शराब और शहद पियाहै उसका फल प्राप्त होने पर यह घोर रसपी-

कह वि तउ जइ छुट्टो। असिपत्तवणम्मि पविसई भयभीउ॥
णिपडंति तत्थ पत्ताइं। खग्गसरिसाइ अणवरयं॥१५६॥

अर्थ-यदि किसी प्रकार उनसे छूटता है तो वह डराहुआ असिपत्र वणमें जा घुसताहै, परन्तु वहांभी तलवार की समान तेज धारवाले वृक्षों के पत्ते उसपर पड़तेहैं-

तो तम्मि पत्तपडणेण। छिण्णकर चरण भिण्णपुट्ठिसिरो॥
पगलंतरुहिरधारो। कंदंतो सो तउ णिग्गई॥१५७॥

अर्थ-पत्तोंके गिरने से हाथ पैर सिर और धड़ कट २ कर अलग होजाते हैं और खून की धारा बहने लगती है, तब रुलाता हुवा वहांसेभी निकलता है-

तुरियं पलायमाणं। सहसा धरिऊण णारया कूरा॥

छित्तूण तस्स मंसं । तुंडम्मि छुहंति तस्सेव ॥ १५८ ॥

अर्थ-तब उस भागते हुवे को क्रूर नारकी तुरंत पकड़ लेते हैं और उसका मांस नोचकर तुंडे में डालते हैं ॥

सो तु अणिच्छमाणं । णियमंसं तो भणंति रे दुट्ठा ॥

अइमिट्ठं भणिऊण । भक्खंतो आसि जं पुव्वं ॥ १५९ ॥

अर्थ-वह अपने मांस को नहीं खाना चाहता है, तब वह कहते हैं कि रे दुष्ट तू तो पूर्वजन्म में परजीवों के मांस को मीठा कहकर खाया करता था--

ता किं ते विस्सरियं । जेण मुहं कुणासि रे पराहुत्तं ॥

एवं भणिऊण कुसिं । छुहंति तुंडम्मि पज्जालियं ॥ १६० ॥

अर्थ-वह बात तूने कैसे भुलादी जो अब मुख मोड़ता है, ऐसा कहकर जलते हुवे लोहे के टुकड़े तुंडे में डालते हैं--

अइ तिव्वदाहसंता- । विउंति सो वेयणासमभिभीओ ॥

किमिपूइरुहिरपुण्णं । वइतरणी णाई नई विसई ॥ १६१ ॥

अर्थ-तब अति तीव्र दाह में संतापवान् वह वेदनासे व्याकुल हुवा वैतरणी नदी में घुसता है, वह नदी पीप खून और कीड़ों से भरी हुई होती है--

तत्थ वि पविसमित्तो । खारुण्हजलेण दड्ढसव्वंगो ॥

णिस्सरइ तउ तुरिउं । हाहाकारं पकुव्वंतो ॥ १६२॥

अर्थ-उसमें घुसनेही खारी और गर्म जलसे उसका शरीर दाझा जाता है, तब तुरंतही उसमें से हाहाकार करता हुवा निकलता है--

दट्ठूण णारया णील- । मंडवे तत्तलोहपडिमाऊ ॥

आलिंगाविंति तहिं । धरिऊण बला विलवमाणं ॥ १६३ ॥

अर्थ-तब नारकी उसको देखकर पकड़ते हैं और विलाप करते हुवे को तपी हुई लोहे की मूर्ति जबरदस्ती आलिंगन कराते हैं--

अगणित्ता गुरुवयणं । परत्थिवेसं च आसि सेवंतो ॥

एइह भे पावफलं । ण सहासि किं रुवासि तं जेण ॥ १६४ ॥

अर्थ-गुरुवचन को कुछ न गिननेवाले, परस्त्री और वेश्या का

सेवन करनेवाले अब तू उन पापों का फल क्यों नहीं सहता है और क्यों रोता है-

पुव्वभवे जं कम्मं । पंचिंदियवसगएण जीवेण ॥
हसमाणेण णिबध्धं । तं किं णित्थरसि रोवंतो ॥ १६५ ॥

अर्थ-पूर्वजन्म में पांचों इन्द्रियों के बश होकर जो पाप हँस २ कर किये हैं क्या वह रोनेसे दूर होसक्ते हैं।

किकवाउगिद्धवायस । सरूव धरिऊण णारया चेव ।
पहणंति वज्जमय- तुंडणिक्खणेहिं रदेहिं दयारहिया ॥ १६६ ॥

अर्थ-वह निर्दयी नारकी मुर्गा, गिद्ध, कव्वा, आदिक का रूप धारण करके वज्र के समान कठोर चोंचों से और दांतों से उस को नोचते हैं।

धरिऊण उद्धढजंधं । करकयचक्केहिं केइ फाडंति।
मुसलेहिं मुग्गरेहिं य । चुण्णीकुव्वंति परे णिरया ॥ १६७ ॥

अर्थ-अन्य नारकी उसकी जांघ पर आरा रखकर काटते हैं और मूसल मुद्गर से उसका चूर्ण करते हैं-

जिब्भाछेयण णयणा- । ण फोडणं दंतचूरणं जलणं ॥
मिन्नणं कुणंति खंडं- । ति केइ तिलमत्तखंडेहिं ॥ १६८ ॥

अर्थ--जीभकाटते हैं, आंख फोड़ते हैं, दांत तोड़ते हैं, जलाते हैं, काट २ कर तिलके बराबर टुकड़े करते हैं और फिर मिलाते हैं।

अण्णे कलंववालुय- । थलम्मि तत्तम्मि पाडिऊण पुणो ॥
लोटाविंति रडंतं । णिहणंति घसंति भूमीए ॥ १६९ ॥

अर्थ--कोई नारकी उसको मोटे २ और गरम २ बालू रेतपर डालते हैं, रोतेहुवे को धरतीपर लुढ़काते हैं, मारते हैं, और धरती पर घसीटते हैं-

असुरा वि कुण पावा । तत्थ वि गंतूण पुव्ववेराइं ॥
सुमराविऊण तर्ड । जुद्धं लावंति अण्णोण्णं ॥ १७० ॥

अर्थ-क्रूर और पापी असुर जातिके देव भी वहां जाकर नारकियोंको पूर्व वैर याद दिलाकर आपस में लड़वाते हैं -

सत्तेव अहोलोए । पुढवीऊ तत्थ सयसहस्साइं ॥
तिरियाणीं चुलसीइ । सेडिंदपइण्णयाइ हवे ॥ १७१ ॥

अर्थ—नरक की सात भूमि हैं इनमें श्रेणीबद्ध, इंद्रक, और प्रकीर्णक इसप्रकार तीन जाति के बिल अर्थात् नारकियों के स्थान हैं, उन सब बिलों की गिणती ८४ लाख हैं—

रयणप्पह सक्करपह । वालुप्पह पंकधूमतमभासा ॥
तमतमपहपुढवीणं । जाणह अणुवहणामाई ॥ १७२ ॥

अर्थ—नरक की सातों पृथिवीयों के यह नाम हैं, रत्नप्रभा शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, और तमस्तमप्रभा, इनके नामों के अर्थ से ही उनकी दशा जान लो—

पढमाइ जमुक्कस्सं । विदियाइ सुसाहि जहण्णं तं ॥
तिय सत्त दस य सत्तर । स दु साहि बाईस तेत्तीसं ॥ १७३ ॥

अर्थ—पहले नरक में जो उत्कृष्ट आयु है वह दूसरे नरक में जघन्य आयु है, तीन, सात, दस, सतरा, बाईस और तेंतीस—

सायरसंखा एसा । कमेण विदियाइ जाण पुढवीसु ॥
एक्कस्स साउमाणं । णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ १७४॥

अर्थ—इतनी सागर संख्या उत्कृष्ट आयु की दूसरे नरक से सिलसिलेवार है और पहले नरक में एक सागर की आयु है, ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है—

एत्तियपमाणकालं । सारीरं माणसं बहुपयारं ॥
दुक्खं सहइ णिच्चं । विसणस्स फलेणिमो जीवो ॥ १७५ ॥

अर्थ—व्यसन सेवन के फलसे इतने कालतक जीव नरक में मानसीक और शारीरक बहुत प्रकार के तीव्र दुःख भोगता है—

तिरियगईए वि तहा । थावरकायेसु बहुपयारेसु ॥
अत्थइ अणंतकालं । हिंडतो जोणिलक्खेसु ॥ १७६ ॥

अर्थ—तिर्यंच गतिमें और बहुत प्रकार की स्थावर काय में भी लाखों योनियों में भ्रमताहुवा अनन्त काल रहता है—

कहमवि णिस्सरिऊणं । तत्तो वियलिंदियेसु संभवइ ॥
तत्थ वि किलिस्समाणो । कालमसंखिज्जइ वसई ॥ १७७ ॥

अर्थ—अस्थावरकाय में से किसी कारण से निकलकर यदि विकलेन्द्रिय अर्थात दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय वा चौइन्द्रिय होता है तो वहां भी क्लेश उठाताहुवा असंख्यात कालतक भ्रमतारहता है—

तो खिल्लविजोएण । कह वि पंचेंदिएसु उववण्णो ॥

तत्थ वि असंखकालं । जोणिसहस्सेसु परिभमइ ॥ १७८ ॥

अर्थ-वहां से छूटकर यदि किसी कारण से पंचेंद्रिय होता है तो वहां भी असंख्यात कालतक हज़ारों योनियों में भ्रमतारहताहै-

छेयण भेयण तासण । णिलंथणं जहा तहा दमणं ॥
णिखलण मलणं दलणं । पउलण उ कत्तणं चेव ॥ १७९ ॥
बंधण भारारोवण । लंछणपाणस्स रोहणं सहणं ॥
सीउण्ह भुक्खतण्हं । हियाण तह पिल्लयविउयं ॥ १८० ॥

अर्थ-छेदन, भेदन, त्रास, वशमें रहना, किसी प्रकार दबना, मलना, दलना, जलना, कतरना, बंधना, बोझलदना, खानापीना रुकना, सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मनकी चिन्ता और बालक का वियोग—

इच्चेवमाइ बहुत्तं । दुक्खं पाउणइ तिरियजोणीए ॥
विसणस्स फलेण जदो । विसणं परिवज्जए तह्मा ॥ १८१ ॥

अर्थ-तिर्यंच योनि में भी व्यसन सेवन के फल से इसप्रकार बहुत दुःख उठाने पड़ते हैं, इसकारण व्यसनों का त्याग करना चाहिये -

मणुयत्ते विय जीवा । दुक्खइ पावंति बहुवियप्पेहिं ॥
इट्ठाणिट्ठेसु सया । वियोयसंजोयजं तिव्वं ॥ १८२ ॥

अर्थ-मनुष्य जन्म में भी इष्ट अनिष्ट के संयोग वियोग से जीव के चित्त को अनेक दुःख होते हैं-

उप्पण्णपढमसमय- । म्हि केई जणणीइ छंडिउ संता ॥
कारणवसप्पउण्ह- । भुक्खतण्हाउरो मरई ॥ १८३ ॥

अर्थ-कोई पैदा होते ही माता के मरने से सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास की अनेक तकलीफ़ उठाकर मर जाता है-

बालत्तणे वि जीवो । मायापियरेहि कोवि परिहीणो ॥
उच्छिट्ठं भक्खंतो । जीवइ दुक्खेण परगेहे ॥ १८४ ॥

अर्थ-कोई बालक अवस्था ही में मा बाप के न रहने से पराये घर में झूठे टुकड़े खाकर दुःख के साथ जीता है-

पुव्वं दाणं दाऊ- । ण को वि सधणो जणस्स जहजोयं ॥
पच्छा सो धणरहिउ । ण लहइ कूरं पि जायंते ॥ १८५ ॥

अर्थ-कोई धनवान् अपने धन को यथायोग्य दान में देता है पीछे यदि वह निर्धन होजाता है तो उसको मांगने पर भी एक मुट्ठी अन्न नहीं मिलता है-

अण्णो उ पावरोएण । वाहिज्जण णयरबज्झ देसम्मि ॥
अच्छइ सहायरहिओ । ण लहइ सघरे वि चिट्ठउं ॥ १८६ ॥

अर्थ-कोई पाप के उदय से किसी व्याधि के आने पर अपना देश छोड़ता है और सहायरहित होजाता है, इसप्रकार अपने घर में भी ठिकाणा नहीं पाता है-

भिसउं वि भुक्खिओ हं । पुत्ता मे देहि पाणमसणं च ॥
एवं कुव्वंतस्स वि । ण को वि वयणं च सद्दहदि ॥ १८७ ॥

अर्थ-मैं भूखा हूं, मैं प्यासा हूं, बच्चा मुझको अन्न पानी दे, उसके ऐसा कहनेपर भी उसकी बातका कोई विश्वास नहीं करता है—

तो रोयसोयभरिओ । सव्वेसिं सव्वहियाउ दाऊण ॥
दुक्खेण मरइ पच्छा । धिगत्थु मणुयत्तणमसारं ॥ १८८ ॥

अर्थ-सारी उम्र सबको दुःख देताहुवा और रोग शोक उठाता हुवा जो मरता है उसके असार मानुष जीवन को धिक्कार है—

अण्णाणि एवमाई- । णि जाणि दुक्खाणि मणुयलोयम्मि ॥
दीसंति ताणि पावइ । विसणस्स फलेणिमो जीवो ॥ १८९ ॥

अर्थ-इस संसार में अन्य मनुष्यों को अन्य भी अनेक प्रकार के दुःख देखेजाते हैं, उन दुःखों को जीव व्यसनों के फल से उत्पन्न करता है—

किंचुवसमेण पाव- । स्स कहवि देवत्तणं वि संपत्तो ॥
तत्थ वि पावइ दुक्खं । विसणज्जियकम्मपागेण ॥ १९० ॥

अर्थ-यदि कुछ पाप के उपशम होने से किसी प्रकार देवगति भी प्राप्तहोजावै तो वहां भी व्यसन सेवन के पाप के फलसे दुःख ही उठाता है—

दट्ठूण महड्ढीणं । देवाणं ठियज्जरिद्धिमाहप्पं ॥
अप्पाहिओ विसूरइ । माणसदुक्खेण डज्झंतो ॥ १९१ ॥

अर्थ--अधिक ऋद्धिवाले देवोंकी स्थिति, जाति, और ऋद्धि के माहात्म्य को देखकर वह अल्प स्थितिवाला मानासिक दुःख से दग्ध होकर रोता है--

हा मणुयभेव उप्प- । ज्जिऊण तवसंजमं वि लध्दूण ॥
मायाएजीविकप्पं । देवदुग्गइ तेण संपत्ता ॥ १९२ ॥

अर्थ-हाय हाय मनुष्य जन्ममेंभी उत्पन्न होकर और तप संयमकी शक्ति पाकर भी मायाचारी विकल्पों को करता है और उससे खोटे देवोंकी गति पाताहै-

कंदप्पकिल्बिसासुर- । वाहणसमूहदेवजाईसु ॥
जावंजीवं णिवसइ । विसहंतो माणसं दुक्खं ॥ १९३ ॥

अर्थ-कन्दर्प, किल्विष, असुर, बाहन आदिक खोटे देवोंकी जाति में मानासिक दुःख उठाता हुवा आयु व्यतीत करताहै-

छम्मासाऊसेसे । वच्छाहरणाइ हुंति मलिणाई ॥
णाऊण चवणकालं । अहिययरं रुयइ सोगेण ॥ १९४ ॥

अर्थ-जब आयुके छै महीने बाकी रहजाते हैं तब उसके वस्त्र और आभरण मैले होजाते हैं, इस से वह जानलेता है कि मेरा मरण निकट आगया और शोक करके अधिक रोताहै-

हा हा कहं णिल्लोए । किमिकुलभरियम्मि अइदुगंधम्मि ॥
णवमासं पुइरुहिरा- । उल्लम्मि गब्भम्मि वसियव्वं ॥ १९५ ॥

अर्थ-हाय हाय मनुष्य किस प्रकार नौ महीने गर्भमें रहता है, वह गर्भ अनेक प्रकार के कीड़ों से भरा हुवा, दुर्गंधमय और पीप तथा रुधिर से व्याप्त होता है-

किं करमि कस्स वच्चामि । कस्स साहेमि जामि कं सरणं ॥
ण वि अत्थि अत्थ बंधू । जो मे धारइ णिपडंतं ॥ १९६ ॥

अर्थ-मैं क्याकरूं किस प्रकार बचूं. क्या उपाय करूं, किसकी शरण जाऊं, ऐसा कोई मित्र नहीं है जो मुझको यहां से गिरते हुवे को बचावे-

वज्जाउहो महप्पा । ऐरावणवाहणो सुरिंदो वि ॥
जावंजीवं सो से- । विओ वि ण उद्धेर मं तहावि ॥ १९७ ॥

अर्थ-वज्र आयुधवान, महात्मा, ऐरावण हाथी की सवारी वाला और सुरेन्द्र भी जिसकी मैंने सारी उम्र सेवा की है मुझको यहां रखनेकी शक्ति नहीं रखता है-

जइ मे होई मरणं । ता होज्जइ किं तु मे समुप्पत्ती ॥

एगिंदिएसु जायज ! णो मणुसेसु कइया वि ॥ १९८ ॥

अर्थ-यदि मेरा मरण होगा ही तो मैं एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न न होऊं, मनुष्य होजाऊं-

अह वा किं कुणइ पुरा-। जियम्मि उदयागयम्मि कम्मम्मि ॥
सक्को वि जदो ण तरइ । अप्पाणं रक्खिवउं काले ॥ १९९ ॥

अर्थ-अथवा अब क्या कियाजावै उपार्जन किये कर्मों के उदय आनेपर उस कालमें इन्द्र भी अपनी रक्षा नहीं करसक्ता है-

एवं बहुप्पयारं । सरणविरहिउं खरं विलवमाणो ॥
एइंदिएसु जायइ । मरिऊण तउ विवागेण ॥ २०० ॥

अर्थ-इस प्रकार शरण रहित वह देव अनेक प्रकार बहुत २ बिलाप करता हुवा मर कर उस बिलाप के फलसे एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न होता है-

तत्थ वि अणंतकालं । किलिस्समाणो सहइ बहुदुक्खं ॥
मिच्छत्तसंसयमइ जीवो । किं किं दुक्खं ण पाविज्जइ ॥ २०१ ॥

अर्थ-वहां भी अनन्तकाल तक क्लेशित होता हुवा बहुतदुःख सहता है, मिथ्यात्व और संशय में पडा हुवा जीव क्या २ दुःख नहीं उठाता है-

पिच्छह दिव्वे भोए । जीवो भोत्तूण देवलोयम्मि ॥
एइंदिएसु जायइ । धिगत्थु संसारवासस्स ॥ २०२ ॥

अर्थ-देखो स्वर्ग में दिव्य भोग भोगता हुवा यह जीव एकेन्द्रिय जाति में जन्म लेताहै, ऐसे संसारवासको धिक्कार है-

एवं बहुप्पयारं । दुक्खं संसारसायरे घोरे ॥
जीवो सरणविरहिउं । विसणस्स फलेण पाउणई ॥ २०३ ॥

अर्थ-शरण रहित जीव इस घोर संसार सागरमें इस प्रकार व्यसन सेवनके फलसे बहुत दुःख उठाता है-

पंचुंबरसहियाइं । परिहरई सत्तविसणाइं ॥
सम्मत्तविसुद्धमई । सो दंसणसावयो भणिऊ ॥ २०४ ॥

अर्थ-जो कोई पंचउदम्बर सहित सात व्यसनों का त्याग करता है उस शुद्ध सम्यक्ती को दर्शन श्रावक कहते हैं-

एवं दंसणसावय- । ठाणं पढमं समासउं भणियं ॥
वयसावयगुणठाणं । एदो बिदियं पवक्खामि ॥ २०५ ॥

अर्थ-इस प्रकार मैंने श्रावककी पहली दर्शन प्रतिमाका संक्षेप रूप वर्णन किया अब दूसरी प्रतिमा का वर्णन करता हूं-

दूसरी व्रतप्रतिमा।

पंचेव अणुव्वयाइं। गुणव्वयाइं होंति पुण तिण्णि॥
सिक्खावयाणि चत्तारि। जाइए विदियम्मि ठाणम्मि॥ २०६॥

अर्थ-पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत, चार शिक्षाव्रत को जो कोई पालता है वह दूसरी प्रतिमाका धारी है-

पाणाइवायविरई। सच्चमदत्तस्स वज्जणं चेव॥
थूलयड बंभचेरं। इच्छाए गंथपरिमाणं॥ २०७॥

अर्थ-जीवहिंसा, झूठ, चोरी और अब्रह्म का स्थूलरूप त्याग और इच्छानुसार परिग्रह का परिमाण करना यह पांच अनुव्रत हैं।

जे तसकाया जीवा। पुव्वुद्दिट्ठा ण हिंसियव्वा ते।
एइंदिया वि णिक्का-। रणेण पढमं वयं थूलं॥ २०८॥

अर्थ-आंखों से दीखते हुवे त्रसजीवको नहीं मारना और एकेन्द्रियजीव की भी बिना प्रयोजन हिंसा नहीं करना स्थूल अहिंसा व्रत है।

अलियं ण जंपणीयं। पाणिवहकरं तु सच्चवयणं पि।
रायेण य दोसेण य। णेयं विदियं वयं थूलं॥ २०९॥

अर्थ-राग वा द्वेष से अनीति वचन नहीं बोलना और जिस से किसी जीव की हिंसा होती हो ऐसा सत्य वचन भी नहीं बोलना इसको स्थूल सत्यव्रत जानों।

पुरगामपट्टणाइसु। पडियं णट्ठं च णिहियवीसरियं॥
परदव्वमगिण्हंत-। स्स होय थूलवयं तिदियं॥ २१०॥

अर्थ-नगर, ग्राम, पट्टन आदिमें पड़ा हुवा, खोया हुवा, गिर पड़ा हुवा, भूला हुवा, पराया द्रव्य नहीं लेना स्थूल अचौर्यव्रत है॥

पव्वेसु इत्थिसेवा। अणंगकीडा सया विवज्जंतो॥
थूलयड बंभयारी। जिणेहि भणिऊ पवयणम्मि॥ २११॥

अर्थ-पर्वके दिन सर्वथा स्त्रीका त्याग और अनङ्ग क्रीड़ाका सदा त्याग ऐसेको जिनेन्द्रने शास्त्र में स्थूल ब्रह्मचारी कहा है-

जं परिमाणं कीरइ। धणधाण्णहिरण्णकंचणाईणं॥

तं जाण पंचमवयं। णिद्दिट्ठमुवासयमज्झयणे॥ २१२ ॥

अर्थ–जो कोई धन, धान्य, रत्न, और स्वर्ण आदिका परिमाण करताहै उसको परिग्रह परिमाण व्रती जानो, उपासकाध्यान शास्त्र में ऐसा कहाहै–

पुव्वुत्तरदक्खिणप-। च्छिमासु काऊण जोयणपमाणं ॥

परदो गमणणियत्ती। दिसिगुणवयं पढमं ॥ २१३ ॥

अर्थ–पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम दिशा में योजन का प्रमाण करके उससे बाहर जानेका त्याग करना प्रथम गुण व्रत अर्थात् दिग्व्रत है–

वयभंगकारणंहो–। इ जम्मि देसम्मि तत्थ णियमेण ॥

कीरइ गमणणियत्ती। तं जाण गुणव्वयं विदियं ॥ २१४ ॥

अर्थ-जिसदेश में व्रतके भंग होनेका कारण होताहै उस देशमें जानेका नियम रूप त्याग करना दूसरा गुण व्रत अर्थात् देशव्रतहै–

अयदंडपासविक्कय । कूडतुलामाणकूरसत्ताणं ॥

जं संगहो ण कीरइ। तं जाण गुणव्वयं तिदियं ॥ २१५ ॥

अर्थ–लोहे का टुकड़ा तलवार आदिक, लाठी, फांस अर्थात् मेख आदिक इनका बेचना और झूठी तराजू, झूठेबाट, तथा क्रूरजानवर रखना तीसरा गुणव्रत अर्थात् अनर्थ दंड त्यागव्रतहै–

जं परिमाणं कीरइ। मंडणतंबोलगंधपुप्फाणं ॥

तं भोयविरइ भणियं। पढमं सिक्खावयं सुत्ते ॥ २१६ ॥

अर्थ–शरीर को शोभा देनेवाले पदार्थ, तांबूल, सुगंध और पुष्प आदिकका परिमाण करना भोग विरति नामा पहला शिक्षाव्रत है–

सगसत्तिए महिला-। वत्थाहरणाण जं तु परिमाणं ॥

तं परिभोयणिवुत्ती। विदियं सिक्खावयं जाणे ॥२१७॥

अर्थ–अपनी शक्तिके अनुसार स्त्री, वस्त्र, आभरण आदिक का परिमाण करना उपभोगनिवृत्ति नामका दूसरा शिक्षाव्रतहै–

अतिहिस्स संविभागो। तिदियं सिक्खावयं मुणेयव्वं ॥

तत्थ वि पंचाहियारा। णेया सुत्ताणुमग्गेण ॥ २१८ ॥

अर्थ–अतिथि संविभाग अर्थात् अतिथि को भोजनादिक दान

देना तीसरा शिक्षाव्रत जानो, इसके पांच अधिकार हैं जो सूत्र के अनुसार जानने चाहियें-

पत्तंतर यादारो । दाणविहाणं तहेव दायव्वं ॥
दाणस्स फलं ऐया । पंच हियारा कमेणेदे ॥ २१९ ॥

अर्थ-पात्रका भेद, दाता, दानविधि, देनेयोग्य पदार्थ, और दानका फल यह पांच अधिकार क्रमसे जानने चाहियें-

तिविहं मुणेह पत्तं । उत्तममज्झमजहएणभेएण ॥
वयणियमसंजमधरो । उत्तमपत्तं हवे साहू ॥ २२० ॥

अर्थ-उत्तम, मध्यम, जघन्य ऐसे तीन प्रकार के पात्र हैं, व्रत नियम और संयमका करनेवाला साधु उत्तम पात्रहै-

एयारसठाणठिया । मज्झमपत्तं सुसावया भणिया ॥
अविरयसम्माइट्ठी । जहएणपत्तं मुणेयव्वं ॥ २२१ ॥

अर्थ उत्तम श्रावक मध्यम पात्र हैं इसके ग्यारह दर्जे अर्थात् प्रतिमा हैं, और अविरति सम्यक्दृष्टिको जघन्य पात्र जानना चाहिये--

वयतवसीलसमग्गो । सम्मत्तविवज्जिउ कुपत्तं तु ॥
सम्मत्तसीलवयवज्जिउ । अपत्तं जो हवे णियमा ॥ २२२ ॥

अर्थ-जो कोई व्रत, तप, और शील पालता है परन्तु सम्यक्त्व रहितहै वह कुपात्र है, और जो सम्यक्त्व, शील और व्रत रहितहै वह अपात्र है—

सद्धा भगती तुट्ठी । विएणा गा मलुद्धया खमा सत्ती ॥
जत्थेदे सत्तगुणा । तं दायारं पसंसंति ॥ २२३ ॥

अर्थ-श्रद्धा, भक्ति, संतोष, विज्ञान, निर्लोभता, क्षमा, और शक्ति यह सातगुण जिस दातामें हैं वह प्रशंसा योग्य है-

पडिगहणमुच्चठाणं । पादोदयमच्चणं च पणमं च ॥
मणवयणकायसुद्धी । एसणसुद्धी य णवविहं पुएणं ॥ २२४ ॥

अर्थ-पात्रको बुलाना, उच्चस्थान देना अर्थात् ऊंचे बिठाना, पैरधोना, पूजा करना, नमस्कार करना, मनशुद्धि, वचन शुद्धि, कायाशुद्धि, और शुद्ध आहार देना यह नौ विधि पुण्य प्राप्तकराने वाली हैं-

पत्तं णियघरदारे । दट्ठूणण्णत्थ वा विमग्गित्ता ॥
पडिगहणं कायव्वं । णमोत्थु ठाहुत्ति भणिऊण ॥ २२५ ॥
णेऊण णिययगेहं । णिरवज्जाणु तह उच्चठाम्मि ॥
ठविऊण तहा चलणा- । ण धोवणं होय कायव्वं ॥ २२६ ॥
पाओदयं पवित्तं । सिरम्मि काऊण अच्चणं कुज्जा ॥
गंधक्खयकुसुमणेव- । ज्जदीवधूवेहि फलेहिं ॥ २२७ ॥
पुप्फंजलिं खिवित्ता । पयपुरओ वंदणं तओ कुज्जा ॥
चइऊण अट्टरुद्दे । मणसुद्धी होय कायव्वा ॥ २२८ ॥
णिट्ठुरकक्कसवयणा- । इवज्जणं तं वियाण वचसुद्धिं ॥
सव्वत्थसंपुडंग- । स्स होइ तह कायसुद्धीए ॥ २२९ ॥
णहजंतुरोमअत्थी । कणकुंडयमंसरुहिरचम्माइं ॥
कंदफलमूलबीया- । अपण मला चउदसा होंति ॥ २३० ॥
चउदसमलपरिसुद्धं । जं दाणं सोहिऊण जइणाइ॥
संजमिजणस्स दिज्जइ । सा णेया एसणासुद्धी ॥ २३१ ॥
दाणसमयम्मि एवं । सुत्तणुसारेण णवविहाणाणि॥
भणियाणि मया एहिं । दायव्वं वण्णइस्सामि ॥ २३२ ॥

अर्थ-पात्रको अपने घरके द्वारपर देखकर अथवा अन्यत्र से बुलाकर नमोऽस्तु नमोऽस्तु तिष्ठ तिष्ठ कहकर प्रतिग्रहण करना चाहिये -

तब अपने घरमें लाकर वहां ऊंचे स्थान पर बिठाकर उसके पैर धोने चाहियें—

पैरके धोवनको सिरपर लगाकर गन्ध, अक्षत, फूल, नैवेद्य, दीप, धूप और फलसे उसकी पूजा करे-

पुष्पकी अंजुली उसपर बरसा कर उसके पैरों की वंदनाकरे और आर्तरौद्र ध्यान को छोड़कर मनको शुद्ध करे-निष्ठुर, कर्कश आदिक वचन नहीं बोलना इसको वचन शुद्धि जानो, अपनी कायाको सब तरफसे संकोच करना कायशुद्धिहै--नाखून, जीव जंतु, केश, हड्डी, मल, मूत्र, मांस, रुधिर, चर्म, कंद, फल, मूल, बीज और अशुद्ध आहार यह १४ मल हैं-१४ प्रकारके मलसे रहित यत्नसे शोधा हुआ जो दान संयमी मुनिको दिया जाताहै उसको एषणा शुद्धि जानो-

दानके समय की यह९विधि सूत्रके अनुसार मैंने कही अबमैं वर्णन करता हूं कि देने योग्य क्या है—

आहारोसहसत्था- । भयभेउ जं चउव्विहं दाणं ॥
तं उच्चइ दायव्वं । णायव्वमुवासयाज्झयणे ॥ २११ ॥

अर्थ-आहार, औषधि, शास्त्र, और अभय यह चार प्रकार का दान देने योग्यहै, इनका स्वरूप उपासका ध्ययन शास्त्रसे जानना चाहिये-

असणं पाणं खाइयं । साइयमिदि चउविहो वराहारो ॥
पुव्वुत्तणवविहाणे- । हि तिविहपत्तस्स दायव्वं ॥२१४॥

अर्थ-भोजन, पीने योग्य, खाने योग्य, स्वादलेने योग्य यह चार प्रकारका आहारहै, यह आहार९विधिसे तीन प्रकारके साधु को देना चाहिये-

अइवुड्ढबालमूयं- । धवहिरदेसंतरीयरोइहं ॥
जहजोग्गं दायव्वं । करुणादाणेत्ति भणिऊण ॥ २१५ ॥

अर्थ-बहुत बूढा, बालक, गूंगा, अन्धा, बहिरा, परदेशी, रोगी इनको यथा योग्य देना चाहिये, इसको करुणादान कहा है-

उववासवाहिपरिसम- । किलेसपरिपीडियं मुणेऊण ॥
पच्छं सरीरजोग्गं । भेसहदाणं पि दायव्वं ॥ २१६ ॥

अर्थ-उपवास, व्याधि, परिश्रम, और क्लेश से किसी जीव को पीडित देखकर उसके शरीर के योग्य पथ्य और औषधि आदिदेना चाहिये-

आवस्ससत्थाइ लिहा- । विऊण दीज्जंति जं जहाजोग्गं ॥
तं जाण सत्थदाणं । जिणवयणज्झावणं च तहा ॥२१७॥

अर्थ-जिस शास्त्रकी जरूरत हो उसको लिखवाकर यथा योग्यदेना वा जैन सिद्धान्त पढाना सिखाना इसकोशास्त्रदानजानो-

जं कीरइ पररक्खा । णिच्चं मरणभयभीरुजीवाणं ॥
तं दाणं सिंहासण- । संठियं सव्वदाणाणं ॥ २१८ ॥

अर्थ-मरण भयसे भयभीत जीवोंकी जो कोई नित्य रक्षा करता है उसके सब दानोंको यह अभयदान सिंहासन पर बिठा देता है-

अपणाणिणो वि जह्मा । कज्जं ण कुणंति णिप्फलारंभं ॥
तह्मा दाणस्स फलं । समासदो वण्णइस्सामि ॥ २३९ ॥

अर्थ-अज्ञानी भी वह कार्य नहीं करतेहैं जिसमें कुछ लाभ न हो इसकारण दान का फल संक्षेप से वर्णन करता हूं-

जह उत्तम्मि खित्ते । पइण्णमण्णं सुबहुफलं होदि ॥
तह दाणफलं णेयं । दिण्णं तिविहस्स पत्तस्स ॥ २४० ॥

अर्थ-जैसे उत्तम खेतमें बीज बखेरने से बहुत फल प्राप्त होताहै इसही रीतिसे तीन प्रकारके पात्रको दान देनेका फल समझो-

जह मज्झमम्मि खित्ते । अप्पफलं होइ वावियं बीयं ॥
मज्झमफलं विजाणह । कुपत्तदिण्णं तहा दाणं ॥ २४१ ॥

अर्थ-जैसे मध्यम खेतमें बीज डालने से कमती फल होता है इसही प्रकार कुपात्रको दान देने से मध्यम फल होताहै-

जह ऊसरम्मि खित्ते । पइण्णं बीयं ण किं पि रुहेइ ॥
फलवज्जियं वियाणह । अपत्तदिण्णं तहा दाणं ॥ २४२ ॥

अर्थ-जैसे ऊसर खेतमें बीज बोनेसे कुछ नहीं उगता है इसही प्रकार अपात्र को दान देनेसे यह समझो कि कुछ भी फल नहीं होता है-

कम्हि अपत्तविसेसे । दिण्णं दानं दुहावहं होइ ॥
जह विसहरस्स दिण्णं । तिव्वविसं जायए खीरं ॥ २४३ ॥

अर्थ-जैसे सांपको दूध पिलाने से वह दूध ज़हर होजाता है इसही प्रकार कोई ऐसाभी अपात्र होताहै जिसको देनेसे दुःख ही प्राप्त होताहै-

मेहाविऊण सेसा । सामण्णपरूवणा मए उत्ता ॥
इणहेय भणामि फलं । समासउ मंदबुद्धीणं ॥ २४४ ॥

अर्थ-बुद्धिमानों के समझने के अर्थ मैंने साधारण रूप दान का फल वर्णन किया, अब मन्दबुद्धि जीवों को समझाने के वास्ते संक्षेपसे वर्णन करता हूं-

मिच्छादिट्ठी भद्दो । दाणं जो देइ उत्तम पत्ते ॥
तस्स फलेणुववज्जइ । सो उत्तमभोयभूमीसु ॥ २४५ ॥

अर्थ-जो कोई भद्र पुरुष मिथ्यादृष्टि भी है और उत्तम पात्र

को दान देताहै तो उसके फलसे उत्तम भोग भूमि में जन्मलेताहै-

जो मज्झमम्मि पत्तं- । म्मि देइ दाणं खु वामदिट्ठी वि ॥
सो मज्झमासु जीवो । उप्पज्जइ भोयभूमीसु ॥ २४६ ॥

अर्थ-जो कोई मिथ्यादृष्टि होकर भी मध्यम पात्रको दानदेता है वह मध्यम भोग भूमि में जन्मलेताहै-

जो पुण जहण्णपत्तं- । म्मि देइ दाणं तहाविहो णरो ॥
जइए फलेण जहण्ण- । सु भोयभूमीसु सो जीवो ॥ २४७ ॥

अर्थ-जो कोई बिधि अनुसार जघन्यपात्र को दान देताहै वह इस दानके फलसे जघन्य भोग भूमिमें जाता है-

जइए कुपत्तदाणे । णवाम दिट्ठी कुभोयमू मीसु ॥
अणुमोयणेण तिरिया । वि उत्तमठाणं जहाजोग्गं ॥ २४८ ॥

अर्थ-जो कोई मिथ्या दृष्टि कुपात्र को दान देवै तो कुभोग भूमिमें जाताहै और दानकी अनुमोदना करनेसे यथा योग्य तिर्यंचकी उत्तम पर्याय में भी जन्मलेता है—

वध्दाउगा सुदिट्ठी । मणुया अणुमोयणेण तिरिया वि ॥
णियमेणुववज्जंति य । ते उत्तमभोगभूमीसु ॥ २४९ ॥

अर्थ-यदि भोग भूमिकी आयु बाँधकर कोई सम्यक् दृष्टि मनुष्य वा तिर्यंच दानकी अनुमोदना करता है तो नियम रूप वह उत्तम भोगभूमिमें जन्मलेता है—

तत्थ वि दहप्पयारा । कप्पदुमा दिंति उत्तमे भोए ॥
खेत्तसहावेण सया । पुव्वज्जियपुण्णसहियाणं ॥ २५० ॥

अर्थ-भोग भूमिमें दश प्रकारके कल्पवृक्ष हैं जो क्षेत्रके स्वभावसे पुण्यवान्जीवों को उत्तम २ भोगदेते हैं-

वज्जंगतूरभूसण- । जोइसगिहभायणंगमालंगा ॥
भोयणवत्थपदीवं- । गा पदे सुरतरू दसहा ॥ २५१ ॥

अर्थ-मद्यांग, तूर्यांग, भूषणांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भाजनांग मालांग, भोजनांग, वस्त्रांग, प्रदीपांग, यह दशप्रकारके कल्पवृक्ष हैं-

अइसरसमइसुगंधं । दिट्ठं चिय जं जणेहि अहिलासं ॥
इंदियवलपुट्ठियरं । मज्जंगा पाणयं दिंति ॥ २५२ ॥

अर्थ-रुचिकर और सुगंधित जिसके देखने से अभिलाषा पैदाहो

और इन्द्रिय और बलकी पुष्टि करनेवाली हो ऐसी पीनेकी वस्तु मद्यांग वृक्ष से मिलती है-

तयवितयघणसुखिरं । वाजितरं पायवा दिंति ॥
वरमकुटमालाइय । आभरणा भूसणदुमा वि । २५३ ॥

अर्थ-तत, वितत, घन, सुषिर आदिक बाजे जिससे प्राप्तहों वह तूर्यांग वृक्ष है और उत्तम मुकट माला आदिक आभरण और भूषण देनेवाला भूषणांग वृक्ष है-

ससिसूरपयासाऊ । अहियपयासं कुणंति जोईय ॥
दुम्मा णाणविहप्पा- । साए दिंति सया गिहदुमा दिव्वा ॥ २५४॥

अर्थ-ज्योतिरंग वृक्ष चांद सूर्य से भी अधिक प्रकाश करताहै और गृहांग वृक्ष नाना प्रकारके मकान देता है-

कचोलकलसथाला- । इयाइ भायदुमा पयच्छंति ॥
उज्जोयं दीवदुमा । कुणंति गेहस्स मज्झम्मि ॥ २५५ ॥

अर्थ-बाटी, कलश, थाली आदिक बर्तन देनेवाला भाजनांग वृक्षहै और दीपांग वृक्ष घरमें उजयाला करताहै-

वरबहुचीणखोमा- । इयाइ वत्थाइ दिंति वत्थदुमा ॥
वरचउविहमाहारं । भोयणरुक्खा पयच्छंति ॥ २५६ ॥

अर्थ-उत्तम पट तथा रेशमी चीनी आदिक वस्त्र वस्त्रांग वृक्ष देता है और चार प्रकारका आहार भोजनांग वृक्ष देताहै-

वरबहुलपरिमलाभो- । यमोइयासामुहाउ मालाउ ॥
मालादुमा पयच्छं- । ति विविहकुसुमेहिं रइयाउ ॥ २५७ ॥

अर्थ-नाना प्रकार के फूलांसे बनाई हुई उत्कृष्ट और बहुत सुगंधवाली माला जो चित्तको खुश करनेवाली हो माल्यांग वृक्ष देता है-

उक्किठ्ठभोयभूमी- । सु जे णरा उदयसुज्जसमतेया ॥
छधणुसहस्सुत्तुंगा । हुंति तिपल्लाउगा सव्वे ॥ २५८ ॥

अर्थ-उत्तम भोग भूमिका मनुष्य उदय होते हुवे सूरजके समान तेजवाला, छै हजार धनुष ऊंचा और तीन पल्यकी आयुवाला होता है-

देहस्सुच्चत्तम- । ज्झमासु चत्तारि धणुसहस्साइं ॥
पल्लाणि दुण्णियाऊ । पुण्णेंदुसमप्पहा पुरिसा ॥ २५९ ॥

अर्थ-मध्यम भोग भूमिका मनुष्य चार हजार धनुष ऊंचा, दो पल्यकी आयु, और पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रभावाला होता है-

दोधणुसहस्सुत्तुंगा । मणुवा पल्लाउगा जहण्णासु ॥

उत्तमकंचणवण्णा । हवंति पुण्णासु भावेण ॥ २६० ॥

अर्थ-जघन्यभोग भूमिका मनुष्य दोहजार धनुष ऊंचा, एक पल्यकी आयुवाला और उत्तम स्वर्ण के समान वर्णवाला पुण्य के प्रभाव से होता है-

जो पुण कुभोयभूमी- । सु सक्करासमिट्ठियाहारा ॥

फलपुप्फहरा केई । तत्थ पल्लाउगा सव्वे ॥ २११ ॥

अर्थ-कुभोग भूमिके मनुष्य शक्करके समान मीठा आहार करने वाले वा कोई २ फूल फलका आहार करनेवाले होते हैं और सब एक पल्यकी आयुवाले होते हैं-

जायंति जुयलजुयला । उणवण्णदिणेहि जोवणं तेहिं ॥

समचउरससंठाणा । वरवज्जसरीरसंहणणा ॥ २१२ ॥

बाहत्तरिकलसीहया । चउसट्ठिगुणण्णिया तणुकसाया ॥

बत्तीसलक्खणहरा । उज्जमसीला विणेया य ॥२६३ ॥

णवमासाउगी सेसे । गब्भं धरिऊण सुहसमयम्मि ॥

सुहामिच्चुणा मरित्ता । णियमा देवत्त पावंति ॥२६४॥

अर्थ-भोग भूमिमें एक साथ लड़का लड़की का जोड़ा पैदा होता है और ४९ दिन में यौवन दशाको प्राप्त होजाते हैं, उनका शरीर समचतुस्र संस्थान और वज्र वृषभनाराच संहननवाला होताहै, वे मनुष्य ७२ कला और ६४ गुणवे, कमती कषायवाले। ३२ लक्षण वाले, उद्यमवान, विनयवान होते हैं, जब आयु नौ महीने की रहजाती है तब स्त्री गर्भवती होतीहै, बालकके जन्मतेही स्त्री पुरुष दोनों शुभमरणसे मरकर अवश्य देवगतिमें जाते हैं-

ते पुण सम्माइट्ठी । विरयाविरया ति तिविहपत्तस्स ॥

जायंति दाणफलउे । कप्पेसु महड्ढिया देवा ॥२६५॥

अप्पकरसवमज्झगया।उत्थाणुभोगइ विविहसुरसोक्खं॥

तत्तो चुया सम्माण- । मंडलीयासु जायंते ॥ २६६ ॥

तत्थ वि बहुप्पयारं । मणुवसुहं भुंजिऊण णिब्विग्घं ॥

विणयभयावैर- । णकारणं किंचि दट्टूण ॥ २६७ ॥
पडिबुद्धिऊण चइऊ- । ण णिवसीरिं संजमं च चित्तूण ॥
उप्पाइऊण णाणं । केई गच्छंति णिव्वाणं ॥२६८॥
अण्णे सुदेवसुमा- । णुसत्तं पुणो पुणो लहिऊण ॥
सत्तहभवेहि तउ । करंतिकम्मक्खयं णियमा ॥ २६९ ॥

अर्थ—व्रती वा अव्रती सम्यक् दृष्टि तीन प्रकारके पात्र को दान देनेके फलसे स्वर्ग में महर्द्धिक देव होताहै—वहां सैकड़ों अप्सराओं के बीच रहकर अनेक प्रकारके दिव्य भोग भोगताहै, वहांसे मर-कर मध्यलोकमें मंडलेश्वर राजा आदिक उच्च पदवीकाधारी होताहै वहां भी निर्विघ्नतासे बहुत प्रकारके मनुष्य सम्बन्धी सुख भोगकर पीछे वैराग्य प्राप्तहोने का कोई भी कारणपाकर वह बु-द्धिमान् निर्भय होकर राज पाटको छोड़कर और संयमको ग्रहण करके ज्ञानके प्राप्त होनेपर मोक्षको चला जाताहै—

और कोई जीव फिर श्रेष्ठ मनुष्य होताहै और सात आठ भवमें नियमरूप कर्मोंको क्षयकरदेताहै अर्थात मुक्तिपालेताहै—

एवं पत्तविसेसं । दाणविहाणं फलं च णाऊण ॥
अतिहिस्स संविभागो । कायव्वो देसविरदेहिं ॥ २७० ॥

अर्थ—इस प्रकार पात्रको, दान देनेकी विधिको, और दानके फलको जानकर देश विरति श्रावकको अतिथि संविभाग करना चाहिये—

धरिऊण वत्थमत्तं । परिग्गहं छंडिऊण अवसेसं ॥
सगिहे जिणालये वा । तिविहाहारस्स वोसरणं ॥ २७१ ॥
जं कुणइ गुरुसयास- । म्मि सम्ममालोइऊण तिविहेण ॥
सल्लेखणं चउत्थं । सुत्ते सिक्खावयं भणियं ॥२७२॥

अर्थ—वस्त्रमात्र परिग्रह रखकर और बाकीको त्यागकर अपने ही घरमें वा जिन मंदिर में रहकर और तीन प्रकार का आहार त्यागकर जो कोई गुरुके सामने भले प्रकार मन वचन कायसे आलोचना करताहै वह सल्लेखना करता है जिसको शास्त्र में चौथा शिक्षा व्रत कहाहै—

एवं बारसभेयं । वयठाणं वण्णियं मए विदियं ॥
सामाइयं तिदीयं । ठाणं संखेवउं वोच्छं ॥२७३॥

अर्थ—इसप्रकार मैंने दूसरी प्रतिमाके १२ व्रत वर्णन किये, अब तीसरी सामायिक प्रतिमाको संक्षेप से वर्णन करताहूं। —

तीसरी सामायिक प्रतिमा ॥

होऊण सुई चेइय । गिहम्मि सगिहे व चेइयाहिमुहो ॥
अण्णत्त सुइपएसे । पुव्वमुहो उत्तरमुहो वा ॥२७४॥
जिणवयणधम्मचेइय- । परमेट्ठिजिणालयाणि णिच्चं पि ॥
जं वंदणं तियालं । कीरइ सामाइयं तं खु ॥ २७५ ॥

अर्थ-जो कोई शुद्ध होकर अर्थात् स्नान आदिक करके जिन मन्दिरमें वा अपने घरमें जिन बिम्बके सन्मुख वा अन्य पवित्र स्थान में पूर्वदिशा की तरफ वा उत्तर दिशाकी तरफ मुखकरके नित्यतीनकाल जिन धर्म, जिनशास्त्र, जिन बिम्ब, परमेष्ठि और जिन मंदिरकी वंदना करताहै वह निश्चयरूप सामायिक प्रतिमा का धारी है—

काउस्सग्गम्मि ठिउ । लाहालाहं च सत्तुमित्तं च ॥
संजोयविप्पउयं । तिणकंचणचंदणं वासिं ॥ २७६ ॥
जो पस्सइ समभावं । मणम्मि धरिऊण पंचणवयारं ॥
वरअट्ठपाडिहारे- । हिं संजुयं जिणसरूवं च ॥२७७॥
सिद्धसरूवं झायइ । अहवा झाणुत्तमं ससंवेयं ॥
खणमेकमविचलंगो । उत्तमसामाइयं तस्स ॥ २७८ ॥

अर्थ-जो कोई कायोत्सर्ग में स्थित होकर लाभ अलाभ, शत्रु मित्र संयोग वियोग, तृण और स्वर्ण, चन्दन और सर्पको समान दृष्टि से देखता है और मन में पंचनमस्कार मंत्र धारण करता है आठ श्रेष्ठ प्रातिहार्य संयुक्त जिन भगवान्के स्वरूप का ध्यान करताहै वा एकक्षण के वास्ते भी निश्चल अंगहोकर अपने आत्मरूपका ध्यान करताहै उसकी सामायिक उत्तम है—

एवं तिदियं ठाणं । भणियं सामाइयं समासेण ॥
पोसहविहिं चउत्थं । ठाणं एदो पवक्खामि ॥२७९॥

अर्थ-इसप्रकार संक्षेप रूप तीसरी सामायिक प्रतिमा का वर्णन किया, अब मैं चौथी प्रोषध प्रतिमाकी विधि का इसप्रकार वर्णन करता हूं—

चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा॥

उत्तममज्झजहण्णं । तिविहं पोसहविहाणमुद्दिट्ठं ॥
सगसत्ति एयमास- । म्मि चउस्सु पव्वेसु कायव्वं ॥ २८० ॥

अर्थ-उत्तम, मध्यम, और जघन्य तीन प्रकारका प्रोषध उपवास कहागया है जो एक महीने में चार पर्वमें अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये-

सत्तमितेरसिदिवसम्मि । आतिहिजणभोयणावसाणम्मि ॥
भोत्तूण भुंजणिज्जं । तत्थावि काऊण मुहसुद्धिं ॥ २८१॥

अर्थ-सप्तमी और त्रयोदशी के दिन अतिथिको भोजन देकर और आप भोजन खाकर अपनेमुखको शुद्ध करलेना चाहिये-

पक्खालिऊण वयणं । करचरणे णियमिऊण तत्थेव ॥
पच्छा जिणिंदभवणं । गंतूण जिणं णमंसित्ता॥२८२॥

अर्थ-शरीरको और हाथ पैरको धोकर उपवास के नियम नियत करके पश्चात् जिन मंदिरमें जावे और जिनेश्वरको प्रणामकरै-

गुरुपुरउ किरियं कम्मं । वंदणपुव्वं कमेण काऊण ॥
गुरुसक्खियमुववासं । गहिऊण चउव्विहं विहिणा ॥ २८३ ॥

अर्थ-गुरुको वंदना करके और पहले कहे हुवे क्रमके अनुसार आलोचना आदिक करके गुरुकी साक्षी से चार प्रकारके आहार का त्याग करे अर्थात् उपवास ग्रहण करे-

वायणकहाणुपेहण- । सिक्खावणचिंतणाइउवओगेहिं ॥
णेऊण दिवसं सेसं । अवराण्हियवंदणं किच्चा ॥२८४॥

अर्थ-शास्त्र बांचना, धर्मकथाकहना, अनुप्रेक्षा अर्थात बारह प्रकारकी भावना करना, दूसरों को शास्त्र सिखाना, विचारना-इत्यादिक उपयोगमें दिन व्यतीत करके संध्या समय की क्रिया वंदना आदिक करे-

रयणिसमयम्हि ठिच्चा । काउस्सग्गेण णियसत्तीए ॥
पडिलेहिऊण भूमिं । अप्पपमाणेण संथारं ॥२८५ ॥

अर्थ-रात्रिके समय अपनी शक्ति के अनुसार कायोत्सर्ग में स्थित होकर अपने शरीरके बराबर भूमिपर सांथरा करे-

णेऊण किंचि रत्तिं । सइऊण जिणालए णियघरे वा ॥

अहवा सयले रत्तिं । काउस्सग्गेण ठेऊण ॥ २८६ ॥

अर्थ-जिन मंदिरमें वा अपने घरमें सारीरात वा थोड़ीरातके वास्ते कायोत्सर्ग रहे-

पच्चुस्से उट्ठित्ता । वंदणविहिणा जिणं णमंसित्ता ॥
तह दव्वभावपुज्जं । जिणसुयसाहूण काऊण ॥२८७॥

अर्थ-प्रातःकाल उठकर वन्दना और नमस्कार आदिकरके देव गुरु और शास्त्रकी द्रव्यपूजा और भावपूजा करके-

उत्तविहाणेण तहा । दियहं रत्तिं पुणो वि गमिऊण ॥
पारणदिवसम्मि पुणो । पूजं काऊण पुव्वं वा ॥२८८॥

अर्थ-शास्त्रोक्त विधिके अनुसार वह दिन और रातभी व्यतीत करके पारणा के दिन फिर पहले की समान पूजा करे-

गंतूण य णियगेहं । अतिहिविभागं च तत्थ काऊण ॥
जो भुंजइ तस्स फुडं । पोसहविहि उत्तमं होई ॥२८९॥

अर्थ-फिर अपने घरमें जाकर वहां अतिथि संविभाग करके जो कोई पीछेसे भोजन करताहै उसका उत्तम प्रोषधोपवासहोताहै॥

जह उक्कस्स तहाम-ज्झिमवि पोसहविहाणमुद्दिट्ठं ॥
णवरविसेसो सलिलं । छंडित्ता वज्जए सेसं ॥२९०॥

अर्थ-उत्कृष्ठ प्रोषधोपवासकी जो विधिहै वहही मध्यम प्रोषधोपवासकी समझनी चाहिये, कुछ बहुत फरक नहीं है, मध्यम उपवासमें पानीके सिवाय और सर्ववस्तुका त्यागहोताहै

मुणिऊण गुरुवकज्जं । सावज्ज विवज्जिऊण णियारंभं ॥
जइ कुणइ तं पि कुज्जा । सेसं पुव्वंव णायव्वं ॥ २९१ ॥

अर्थ-पापसे बचने के वास्ते बड़े कामों का आरम्भ भी छोड़ना चाहिये यदि कोई काम करना भी हो तो करै परन्तु बाकी कामों को पूर्व कथित समझना चाहिये अर्थात् बाकी आरम्भ का त्याग करना चाहिये—

आयंबिलं य णियडी । एट्ठाणं च एयभत्तं वा ॥
जं कीरइ तं णेयं । जहण्णयं पोसहविहाणं॥२९२॥

अर्थ-आम्बिल पीना वा मीठा न डालकर कोई एक पदार्थ पीना वा एक स्थानमें बैठकर भोजन करना यह जघन्य प्रोषधोपवास है—

सीरयहाणुवट्टण- । गंधमलकेसाइदेहसंकप्पं ॥
अण्णं पि रागहेऊ । विवज्जए पोसहदिणम्मि ॥ २९३ ॥

अर्थ-प्रोषधके दिन स्नान करना, उबटना मलना, सुगंधिलगाना, मालापहनना, बाल बनवाना, देहको साफ करना आदिक क्रिया जो राग उत्पन्न करने वालीहैं नहीं करनी चाहियें—

एवं चउत्थठाणं । विवाणियं पोसहं समासेण ॥
एदो कमेण सेसा- । णि सुणह संखेवेउ वोच्छं ॥ २९४ ॥

अर्थ-इस प्रकार संक्षेपरूप चौथी प्रतिमा का वर्णन किया अब अन्य प्रतिमाओंका भी वर्णन सुनो संक्षपसे कहता हूं-

पांचवीं सचित्तत्यागप्रतिमा ॥

जं वज्जिज्जइ हरियं । तुयपत्तपवालकंदफलबीयं ॥
अप्पासुगं च सलिलं । सचित्तविणिविति तं ठाणं॥ २९५ ॥

अर्थ-लकड़ी, पत्र, अंकुर, कंद, फल,बीज आदिक हरित पदार्थ और अप्रासुक पानी का त्याग सचित्तत्याग प्रतिमाहै-

छटी दिवाब्रह्मचर्यप्रतिमा ॥

मणवयणकायकयका- । रियाणुमोएहिं मेहुणं णवधा ॥
दिवसम्मि जो विवज्जइ । गुणम्मि सो सावउ छट्ठो ॥ २९६ ॥

अर्थ—मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना अर्थात् ९ प्रकार से दिनके समय मैथुन का त्याग छटीप्रतिमा है-

सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा ॥

पुव्वुत्तणवविहाणं । पि मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो ॥
इत्थिकहाइणिवित्तो । सत्तमगुणबंभयारी सो ॥२९७॥

अर्थ-पूर्वोक्त ९ प्रकारसे सर्वथा मैथुनका त्याग और स्त्री कथा काभी त्याग सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा है-

आठवीं आरंभत्यागप्रतिमा ॥

जं किंचि गिहारंभं । बहु थोगं वा सया विवज्जेई ॥
आरंभणियट्टिमई । सो अट्ठम सावऊ भणिऊ ॥ २९८ ॥

अर्थ-थोड़ा वा बहुत सदाके वास्ते गृहसम्बन्धी आरम्भ का त्याग करना आठवीं आरम्भ त्याग प्रतिमाहै-

नवमीं परिग्रहत्यागप्रतिमा ॥

मोत्तूण वत्थमत्तं । परिग्गहं जो विवज्जए सेसं ॥
तत्थ वि मुच्छं ण करेइ । जाणइ सो सावउ णवमो ॥ १९९ ॥

अर्थ-वस्त्रमात्र परिग्रह रखकर जो बाकी परिग्रहका त्याग करताहै और जितना परिग्रह रखताहै उसमें भी ममत्व नहीं करताहै वह नवमीं प्रतिमाका श्रावक है-

दशवीं अनुमतित्यागप्रतिमा ॥

पुट्ठो वि णियमेहिं । य परेहिं लोगेहिं स गिहकज्जम्मि ॥
अणुमणणं जो ण कुणइ । वियाण सो सावउ दसमो ॥ २०० ॥

अर्थ-अपने वा पराये गृहकार्यकी बाबत पूछने परभी जो अनुमोदना नहीं करताहै अर्थात् उस कार्यको अच्छा नहीं कहताहै और अनुमति अर्थात् सलाह नहीं देताहै वह दशमी प्रतिमाका श्रावकहै-

ग्यारहवीं उद्दिष्टत्यागप्रतिमा ॥

एयारसम्मि ठाणे । उक्किट्ठो सावउ हवे दुविहो ॥
वत्थेकधरो पढमो । कोवीणपरिग्गहो विदिउ ॥ २०१ ॥

अर्थ-ग्यारहवीं प्रतिमाका श्रावक उत्कृष्ट श्रावक होताहै उसके दो भेदहैं, प्रथम वस्त्रका रखनेवाला और दूसरा कोपीनमात्र रखनेवाला

धम्मिल्लाणं चयणं । करेइ कत्तरि छुरेण वा पढमो ॥
ठाणाइसु पडिलेहइ । उवयरणेण पयडप्पा ॥ २०२ ॥

अर्थ-पहले दर्जेवाला अपने बाल उस्तरेसे बनवाताहै या कैंचीसे कतरवाताहै, और उसके साथ उपकरणसे स्थान आदिको साफ करताहै

भुंजइ पाणिपत्त- । म्मि भायणे वा सुई समुइट्ठो ॥
उववासं पुण णियमा । चउव्विहं कुणइ पव्वेसु ॥ २०३ ॥

अर्थ-हाथमें वा पवित्र बर्तनमें खाना खाता है और चार पर्वोंमें नियमके साथ उपवास करता है--

पक्खालिऊण पत्तं । पविसइ चरियाय पंगणे ठिच्चा ॥
भणिऊण धम्मलाहं । जायइ भिक्खं सयं चेव ॥ २०४ ॥

अर्थ-धोये हुवे बर्तनको लेकर भिक्षाके वास्ते जाताहै और श्रावकके घरके आंगनमें ठहरकर धर्मलाभ कहकर आप भिक्षा मांगताहै-

सिग्घं लाहालाहे । अदीणवयणो णिउयत्तिऊण तउ ॥
अण्णम्मि गिहे वच्चइ । दरिसइ मोणेण कायव्वं ॥ २०५ ॥

अर्थ-भिक्षा न मिलनेपर दीनवदन न होकर शीघ्र वहांसे निकल आताहै और दूसरे घर जाता है और मौनधरकर अपना आशय प्रकट करताहै-

जइ अद्धहवे कोई । पभणइ पच्छइ मायेणं कुणइ ॥
भोत्तूण णियमभिक्खं । तसपणं भुंजइ सेसं ॥१०६॥

अर्थ–इसके बीचही में यदि कोई बुलाताहै और भोजन करनेकी प्रार्थना करताहै तब पहली लीहुई भिक्षाको खाकर उसकी दीहुई भिक्षाको खाताहै–

पच्छा एयाम्मि गिहे । आइज्जइ प्पासुगं सलिलं ॥ १०७ ॥
जं किं पि परिय भिक्खं । भुंजिजो सोहिऊण जत्तेण ॥
पक्खालिऊण पत्तं । गच्छिज्जो गुरुसयासम्मि ॥ १०८ ॥

अर्थ–यदि कोई नहीं बुलाताहै तब अपने पेट भरनेके मुआफिक भिक्षाके वास्ते फिरता रहताहै, फिर किसी एक घर जाकर जो कुछ मिलाहो उसको खाकर और प्रासुक पानी पीकर और यत्न के साथ बर्तनको धोकर गुरुके पास जाताहै–

जइ एवं ण लहिज्जो । काउरिसागिहम्मि चरियाए ॥
पविसत्ति एयाभिक्खा- । पवित्तिणियमयणं ता कुज्जा॥१०९॥

अर्थ–यदि कृपण पुरुषोंके ही घर हों और भोजन न मिले तब एक दिनके उपवासका नियम करताहै–

गंतूण गुरुसमीवं । पच्चक्खाणं चउविहं विहिणा ॥
गहिऊण यइ सव्वं । अलोचेइ पयत्तेण ॥ ११० ॥

अर्थ–गुरुके समीप जाकर चार प्रकारके आहारका त्याग करके यत्नके साथ सब बातोंकी आलोचना करताहै अर्थात् अपने दोषों को प्रकट करताहै–

एवं भेउ होई । णवर विसेसो कुणिज्ज णियमेण ॥
लोचं धरिज्ज पिच्छं । भुंजिज्जो पाणिपत्तम्मि ॥ १११ ॥

अर्थ–दूसरे दर्जे वालेकी भी यहही क्रियाहै फरक इतनाहै कि नियम के साथ केशलोंच करताहै, पीछी रखताहै और हाथमें भोजन करताहै

दिणपडिमवीरचरिया- । तियालजोगेसु णत्थि अहियारो ॥
सिध्दांतरहस्साणवि । अज्झयणं देसविरदाणां ॥ ११२ ।

अर्थ–दिनमें प्रतिमा योग होना अर्थात् नग्नदिगम्बर होना, वीर आसन, त्रिकालयोग अर्थात् गर्मीमें पर्वतके शिखरपर बरसातमें वृक्षके तले और सरदीमें नदीके किनारे ध्यान करना, सिद्धान्तके रहस्यका पढना, इन बातोंका देशविरतिको अधिकार नहींहै–

उद्दिट्ठपिंडविरउ । दुवियप्पो सावरउ समासेण ॥
एयारसम्मि ठाणे । भणिउ सुत्तणुसारेण ॥ ११३ ॥

पाठकोंको सूचना दीजाती है कि–आगेको रद्दियोंसे ४९ पृष्ठके स्थानपर ५७ पृष्ठसे नंबर क्रमसे है, कृपया पाठक इसको ठीक समझें ।

अर्थ-उत्कृष्ट श्रावक के दोभेद और प्रतिमाका वर्णन शास्त्रके अनुसार संक्षेपसे कियागया-

रात्रिभोजनदोष ॥

एयादसेसु पढमं । वि जदो णिसिभोयणं कुणंतस्स ॥
ठाणं ण ठाइ तम्हा । णिसिभुत्तं परिहरे णियमा ॥ ३१४ ॥

अर्थ-यदि कोई रात्रिभोजन करता है तो वह ग्यारह प्रतिमा में से पहिली प्रतिमा काभी श्रावक नहीं रहताहै इस कारण रात्रिभोजन का त्याग करना चाहिये-

चम्मट्ठिकीडउंदुरु- । भुयंगकेसाइ असणमज्झम्मि ॥
पडियं ण किंपि परसइ । भुंजइ सव्वंपि णिसिसमए ॥ ३१५ ॥

अर्थ-रात्रिके समय चमड़ा, हड्डी, कीड़ा, ऊंदर, सांप, और बाल आदिक जो कुछभी भोजन में पड़ जाता है वह नजर नहीं आता है और सब खाया जाता है-

दीवुज्जोई कुणइ । तह वि चउरिंदिया अपरिमाणा ॥
णिवडंति दिट्ठिराए- । ण मोहिया असणमज्झम्मि॥ ३१६ ॥

अर्थ-यद्यपि दीपक से रोशनी होतीहै परन्तु दृष्टिराग से मोहित होकर अणगिणत चौ इन्द्रिय जीव भोजनमें आपड़तेहैं-

इय परिसमाहारं । भुंजंतो आदणासमिह लोए ॥
पाउणइ परभवम्मि । चउगइसंसारदुक्खाइं ॥ ३१७ ॥

अर्थ-इसप्रकार के आहार का खानेवाला इस लोकमें अपनी आत्माका नाश करता है और परभव में चतुर्गति रूप संसारके दुःख पाताहै-

एवं बहुप्पयारं । दोसं णिसिभोयणम्मि णाऊण ॥
तिविहेण राइभुत्ती । परिहरियव्वा हवे तम्हा ॥ ३१८ ॥

अर्थ-इस प्रकार बहुतदोष रात्रि भोजनमें जानकर मन वचन काय से रात्रि भोजनका त्याग करना चाहिये-

देशविरतिकेअन्यकर्तव्य ॥

विणओ वेयाविच्चं । कायकिलेसो य पुयणविहाणं ॥
सगसत्ती जहजोग्गं । कायव्वं देसविरएहिं ॥ ३१९ ॥

अर्थ-देश विरतिको अपनी शक्तिके अनुसार यथायोग्य विनय वैयावृत्य, कायक्लेश, और पूजा करनी चाहिये-

दंसणणाणचरित्ते । तव उवयारम्मि पंचहा विणऊ ॥
पंचमगइगमणत्थं । कायव्वो देसविरएण ॥ १२० ॥

अर्थ-दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, और उपचार यह पांच प्रकार की विनय मोक्षके अभिलाषी देश विरति को करनी चाहिये-

णिस्संकियसंवेगा- । इ जे गुणा वणिणया मए पुव्वं ॥
तेसिमणुपालणं जं । स वियाणीहि देसणे विणऊ ॥ १२१ ॥

अर्थ-निःशङ्कित और संवेग आदिक जो गुण मैंने पहले वर्णन किये हैं उनको पालन करना दर्शन विनयहै-

णाणे णाणुवयरणे । णाणवंतम्मि तहय भत्ती य ॥
जं पडियरणं कीरइ । णिच्चं तं णाणविणऊ ॥१२२॥

अर्थ-ज्ञानकी, ज्ञानके प्राप्त करानेवाले शास्त्रकी और ज्ञानी पुरुषकी भक्तिकरना, और ज्ञानका अभ्यास करना ज्ञान विनयहै-

पंचविहं चारित्तं । अहियारा जे हि वणिणया तस्स ॥
जं तेसिं बहुमाणं । वियाण चारित्तविणऊ सो॥१२३॥

अर्थ-पांच प्रकारके चारित्रका आदर करना अर्थात् यथा शक्ति पालना चारित्र विनयहै-

वालो यं बुड्ढो यं । संकप्पं वज्जिऊण तवस्सीणं ॥
जं पणिवायं कीरइ । तवविणयं तं वियाणीही ॥१२४॥

अर्थ-यह तपस्वी बालक है, यह वृद्ध है इस प्रकार का विकल्प नहीं करके सर्व तपस्वियों को नमस्कार करना तप विनय है-

उवयारिऊ वि विणऊ । मणवचिकायेण होइ तिवियप्पा ॥
सो पुण दुविहो भणिऊ । पच्चक्खपरोक्खभेएण ॥ १२५ ॥

अर्थ-मनसे, वचन से, काया से, इस प्रकार उपचार विनय के तीन भेद हैं और इनके भी दो दो भेद प्रत्यक्ष और परोक्ष वर्णन किये गये हैं—

जं दुप्परिणामाऊ । मणो णियत्ताविऊण सुहजोए ॥
वाविज्जइ सो विणऊ । जिणेहि माणसिस्सऊ भणिऊ ॥ १२६ ॥

अर्थ-मन को खोटे परिणामों से हटाकर शुभयोग में लगाना इसको जिनेंद्र ने मन विनय कहा है-

हिअमिअपुज्जं सुत्ता- । गुवचि अकरसमकक्कसं बयणं ॥
संजमिजणम्मि जं चा- । डुभासणं वाचिउं विणउ ॥१२७॥

अर्थ-हित, मित, पूज्य, शास्त्र के अनुसार बचन कहना, ऐसे बचन कहना जिनकी हृदय पर चोट न लगे, जो कर्कश न हों, संयमी मुनि को आदरकरनेवाले बचन कहना बचन विनय है—

किरियं अब्भुट्ठाणं । णवणंजलि आसणं च करवाणं ॥
एते पच्चुग्गमणं । च गच्छमाणे अणुव्वजणं ॥ १२८ ॥
कायणुरूवं मद्दणं । करणं कालाणुरूव पडियरणं ॥
संथाराईकरणं । उवयरणाणं च पडिलिहणं ॥ १२९ ॥
इच्चेवमाइ काइय- । विणउ रिसिसावयाण कायव्वो ॥
जिणवयणमणुगणंते- । ण देसविरएण जहजोग्गं । ११० ॥

अर्थ-मुनि और श्रावकों का आदर सत्कार करना, नमस्कार करना, हाथ जोड़ना, आसन देना, आते को देखकर सत्कारके वास्ते उनके सन्मुख जाना, जाते समय उनके पीछे २ जाकर पहुंचा देना, उनके शरीर की शक्ति के अनुसार बदन मलना, समय के अनुसार मदद करना, सांथरा और उपकरण आदिकी सिंभाल करना, जिन आगम के अनुसार इत्यादिक काय विनय देश विरतिको करनी चाहिये-

इय पच्चक्खो एसो । भणिउं गुरुणा विणउ वि अयणाए ॥
अणुवट्टज्जइ जं तं । परोक्खविणउ त्ति णायव्वो ॥१११॥

अर्थ-इसप्रकार मन बचन कायकी जो विनय वर्णन कीगईहै वह प्रत्यक्ष विनय है और गुरूके मौजूद नहोने पर गुरू के पीछे गुरूकी आज्ञा के अनुसार चलना यह परोक्ष विनयहै-

विणएण ससीउज्जल- । जसोहधवलियदियंतउ पुरिसो ॥
सव्वत्थ हवइ सुहिउं । तहेव आदिज्जवयणो य ॥ ११२ ॥

अर्थ-विनय के फलसे पुरुषका चंद्रमा समान उज्ज्वल यश सब तरफ फैलता है और वह सर्वत्र सुखी होता है और सूर्यके समान तेजस्वी होताहै-

जे केइ वि उवएसा । इहपरलोए सुहावा संति ॥
विणएण गुरुजणाउ । सव्वे पाउणइ ते पुरिसा ॥ ११३ ॥

अर्थ-इस लोक और परलोक सम्बन्धी सुख प्राप्त करानेवाले गुरुओं का उपदेश विनय से ही प्राप्तहोताहै-

देविंदचक्कहरमं- । डलीयरायाण जं सुहं लोए ॥
तं सव्वं विणयफलं । णिव्वाणसुहं तहा चेव ॥११४॥

अर्थ-इसलोक में देवेंद्र चक्रवर्ती और मांडलिक राजा आदिक को जो सुख है और मोक्ष सुख यह सब विनय काही फल है-

सामण्णा वि य विज्जा । ण विणयहीणस्स सिद्धिमुवयाइ ॥
किं पुण णिव्वुइविज्जा । विणयविहीणस्स सिज्झेइ ॥११५॥

अर्थ-सामान्य विद्याभी विनयहीन पुरुषको प्राप्तनहीं होती है तो मुक्ति प्राप्तकराने वाली विद्या विनयहीन को कैसे प्राप्त होसक्तीहै-

सत्तू वि मित्तभावं । जह्मा उवयाइ विणयसीलस्स ॥
विणउं तिविहेण तउं । कायव्वो देसविरदेण ॥११६॥

अर्थ-विनयसे शत्रुभी मित्र होजाताहै,इस कारण देश विरति को मन वचन कायसे विनय करनी चाहिये-

अइबालवुड्ढरोगा- । भिभूयतणुकिलेससंजुत्ताणं ॥
चाउव्वण्णे संघे । जहजोग्गं तह मणोण्णाणं ॥ ११७ ॥
करचरणपिट्ठिसिराणं । मद्दण अब्भंगसेयकिरियाहिं ॥
उव्वत्तणपरियत्तण- । पसरणसंकुडणाइहिं ॥ ११८ ॥
पडिरूवकालेहिं मणु । ओयभत्तपाणेहि भेसजेहिं ॥
तह उच्चाराईणवि । किंचणगेहिं तणुधोवणेहिं च ॥ ११९ ॥
संथारसोहणेहि य । वज्जावच्चं सया पयत्तेण ॥
कायव्वं सत्तीए । णिव्विदिगिच्छेण भावेण ॥१४० ॥

अर्थ-मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, इनमें कोई बालक बूढा, रोगी हो वा शरीर में क्लेशहो वा दश प्रकारके मुनि इनके हाथ पैर पीठ सिर दबाना अंग सेकना, उठाना बिठाना इनका अंग पसारना सिकोड़ना करवट दिलाना, प्रकृतिके समान अर्थात् मिजाजके मुआफिक अन्नपानी देना, मल मूत्र आदि फेंकना, शरीरधोना, सांथराठीक करना इत्यादि वैय्या वृत्यअपनी शक्ति समान ग्लानि को छोड़कर सदा करनी चाहिये-

णिस्संकिय संवेगा- । इ जे गुणा वण्णिया मणाविसया ॥

तें होंति प्पयडा पुण । विज्जावच्चं करंतस्स ॥ १४१ ॥

अर्थ-निः शंक आदिक सम्यक्त्व के आठ अंग और संवेगादि आठगुण जो मन सम्बन्धी वर्णन कियेगये हैं वह वैय्या वृत्य करने से प्रकट होतेहैं-

देह तवणियमसंजम । सीलसमाहाण अभयदाणं च ॥
गइ मइ बलं च दियणं । विज्जावच्चं करंतेण ॥१४२ ॥

अर्थ-देह, तप, नियम, शील, समाधान, अभयदान, गति, बुद्धि बल आदिक वैयावृत्य करनेवाले को मिलतेहैं-

गुणपरिणामो जाइय । जिणिंदआणा य पालिया होइ ॥
जिणसमयतिलयभूऊ । लब्भइ पत्तो वि गुणरासीऊ ॥ १४३ ॥
भमइ जए जसकित्ती । सज्जणसुइहियसयणसुहजणणी ॥
अण्णे वि य होंति गुणा । विज्जावच्चेण इह लोए ॥ १४४ ॥

अर्थ-वैयावृत्य करनेवाले के परिणाम गुणरूप होजाते हैं वह जिनेन्द्रकी आज्ञाका पालनेवाला होजाता है, वह जैन विद्या में श्रेष्ठ होकर परलोक में भी उत्तम गुण प्राप्त करता है, सज्जन पुरुषों के कानको मनको और आंखों को सुख देनेवाली उसकी यशकीर्ति जगत् में फैलती है और इसलोक में अन्यभी बहुत से गुण प्राप्त होते हैं-

परलोए वि सरूवो । चिराउसो रोयसोयपरिहीणो ॥
बलतेयसत्तजुत्तो । जायइ अविकप्पपाऊ व ॥१४५ ॥

अर्थ-वैय्यवृत्य करनेवाला जन्मान्तर में भी सुंदररूप, दीर्घ आयु, रोगशोक रहित बल तेज और सत्व संयुक्त और पूर्ण प्रतापीहोता है—

जल्लोसहिसव्वोसहि- । अक्खीणमहाणसाइरिद्धीऊ ॥
अणिमाइगुणा य तहा । विज्जावच्चेण पाउणई ॥ १४६ ॥

अर्थ-जलौषधि, सर्वौषधि, अक्षीण महानस आदिक ऋद्धि और अणिमा आदिक गुण वैयावृत्य से प्राप्त होतेहैं-

किं जंपिएण बहुणा । तिल्लोयसंखोहकारणं महत्तं ॥
तित्थयरणामपुण्णं । विज्जावच्चेण अज्जेइ ॥ १४७ ॥

अर्थ-बहुत कहने से क्या होताहै तीन लोक में आश्चर्य-

कारी जो महामहत्व तीर्थंकर नाम पुण्यप्रकृति है वहभी वैयावृत्य से उत्पन्न होजाती है-

तरुणिमणणयणहारी । रूपबलतेयसत्तसंपण्णो ॥
जाउं विज्जावच्चं । पुव्वं काऊण वसुदेवो ॥ १४८॥

अर्थ-पूर्व जन्म मे वैयावृत्य करने से वासुदेव स्त्रियोंके मन और नयन को हरनेवाला रूपवान् और पूर्ण बल तेज और सत्व वाला हुआ-

आइरियाणं विज्जा- । विच्चं किच्चा असंजदेणावि ॥
तित्थयरणाम पुण्णं । समाज्जियं वासुदेवेण ॥ १४९॥

अर्थ-असंयत अर्थात् व्रतहीन होनेपर भी वासुदेव ने आचार्यों की वैयावृत्य करने से तीर्थंकर नाम पुण्य प्रकृति का बंध किया-

एवं णाऊण फलं । विज्जावच्चस्स परमभत्तीए ॥
णिच्छयजुत्तेण सया । कायव्वं देसविरएण ॥ ३५० ॥

अर्थ-इस प्रकार वैयावृत्य के फल को जानकर दृढ़ निश्चय होकर देशविरति को सदा भक्ति के साथ वैयावृत्य करनी चाहिये-

आयंबिलणिव्वियडी । एयहाणं छट्ठमाइखवणेण ॥
जं कीरइ तणुतावं । कायकिलेसो मुणेयव्वो ॥३५१॥

अर्थ-आंबील पीकर, बिना मिठाई के खाकर, एक स्थान में भोजन करके या छठे दिन आठवें दिन या पंद्रहें दिन भोजन करके शरीर के आताप देने को काय क्लेश जानना चाहिये—

मेहाविणरा एए- । ण चेव बुज्झंति बुद्धिविहवेण ॥
मंदबुद्धिणो तेण । किं पि वोच्छामि सविसेसं ॥३५२॥

अर्थ-जो बुद्धिवान् मनुष्य हैं वह तो अपनी बुद्धिबलके द्वारा इतनी ही बात से उपवास का स्वरूप जान लेते हैं परन्तु मन्दबुद्धि पुरुषों के समझाने के वास्ते विस्तार के साथ वर्णन करता हूं-

आसाढ कत्तिए फ- । ग्गुणे य सियपंचमीए गुरुमूले ॥
गहिऊण विहिं विहिणा । पुव्वं काऊण जिणपूजा ३५३
पडिमासमेक्कखमणो- । णा जावज्जासाणि पंचमासा य ॥
भाविज्जियणा कायव्वा । मुत्तिसुहं जायमाणेणा ॥ ३५४ ॥

अर्थ-आषाढ़, कार्तिक, या फाल्गुण महीने में से किसी एक महीने

की शुक्लपक्ष की पंचमी को प्रथम जिन पूजा करके और गुरु के समीप आकर विधिपूर्वक उपवास व्रत ग्रहण करके मुक्ति सुख चाहने वालों को पांच वर्ष तक उसही महीने और उसही पक्ष में बराबर करते रहना चाहिये बीच में किसी वर्ष भी अन्तर नहीं पड़ना चाहिये ॥

अवसाणे पंच पड़ा- । विऊण पडिमाय जिणवरिंदाणं ॥
तह पंच पुत्थयाणि य- । लिहाविऊणं ससत्तीए ॥१५५॥
तेसिं पयिट्ठयाले । जं किं पि पइट्ठजोग्गमुवयरणं ॥
तं सव्वं कायव्वं । पत्तेयं पंच पंच संखाए ॥ १५६ ॥

अर्थ-व्रतपूर्ण होजानेपर जिनेंद्रकी पांच प्रतिमाबनवानी चाहियें और अपनी शक्ति समान पांच पुस्तक लिखवानी चाहियें-और उनकी प्रतिष्ठाकराने में जो जो उपकरण चाहिये वह भी पांच ९ बनवाने चाहियें—

सुहिरण्णपंचकलसे । पुरउ वित्थारिऊण वत्थमुहे ॥
पक्कण्णं बहुभेयं । फलाणि विविहाणि तह चेव ॥ १५७ ॥
दाणं च जहाजोग्गं । दाऊण चउव्विहस्स संघस्स ॥
उज्जावणाविहि एवं । कायव्वो देसविरएण ॥१५८॥

अर्थ-उत्तम सोने के पांच कलशजिनका मुख वस्त्रसे बंधाहुवा हो और बहुत प्रकारके पकान और फल पास रखदे और चतुर्विध संघको अर्थात मुनि श्रावक और आर्यका और श्रावका को यथा योग्य दानदेकर देश विरतिको इसप्रकार उद्यापनकी विधि करनी चाहिये—

उज्जवणविहिं ण तरइ । काउं जइ कोवि अत्थपरिहीणो ॥
तो विउणं कायव्वं । उववासविहाणं पयत्तेण ॥ १५९ ॥

अर्थ-यदि कोई निर्धन उद्यापनकी विधि नहीं करसक्ता है तो विधिपूर्वक यत्नके साथ दुगणे उपवास करने चाहियें-अर्थात दश वर्षतक करना चाहिये—

जइ अंतरम्मि कारण- । वसेण एक्को व दो व उपवासा ॥
ण कउ तो मूलाउ । पुणो वि सो होइ कायव्वो ॥१६०॥

अर्थ-यदि किसी कारणसे एक वा दो उपवास बीचमें न हो

सकैं तो पारम्भ से फिर उपवास करना शुरू करना चाहिये-

एस कमो णायव्वो । सव्वविहीणं भणिज्जमाणाणं ॥
एवं णाऊण फुडं । णियमाई होइ कायव्वो ॥ १६१ ॥

अर्थ=व्रतकी सर्व विधिजो वर्णन कीगई है उनको जानकर यदि किसी प्रकारभी व्रत भंग होजावे तो फिरसे उसही क्रमानुसारकरे-

पंचमिउववसणविहि । किच्चा देविंदचक्कवट्टित्ते ॥
भोत्तूण दिव्वभोए । पच्छा पाउणइ णिव्वाणं ॥ १६२ ॥

अर्थ-इस पंचमी व्रतका करनेवाला देवेंद्र और चक्रवर्ती आदिक के दिव्य भोग भोगकर पीछे निर्वाणपद प्राप्तकरताहै-

विहिणा गहिऊण विहिं । रोहिणिरिक्खम्मि पंचवासाणि ।
पंच य मासा जावउ । उववासं तम्मि रिक्खम्मि ॥१६३॥
काऊणुज्जावणं पुण । पुव्वविहाणेण होइ कायव्वं ॥
णवरि विसेसो पडिमा । कायव्वा वासुपुज्जस्स ॥ १६४ ॥
तस्स फलेणित्थी वा । पुरिसो सोयं ण पच्छावि कयावि॥
भोत्तूण विडलभोगं । पच्छा पाउणइ णिव्वाणं ॥ १६५ ॥

अर्थ-रोहिणी नक्षत्र में विधिपूर्वक उपवास ग्रहण करकेपांच वर्षतक पांच महीने में रोहिणी नक्षत्रमें विधिपूर्वक करता रहै,और पूर्व विधिके अनुसार उद्यापन करै परन्तुप्रतिमा वास पूज्य भगवान् की करावै,इस व्रतके फलसे स्त्री हो वा पुरुषहो उसको शोक कभी नहीं होताहै बल्कि उत्तम २ भोग भोगकर पीछे निर्वाणपद प्राप्त करताहै- (यह रोहिणी व्रत कहलाताहै)

गिहिऊणासिणिरिक्ख- । म्मि विहिं रिक्खेसु सत्तवीसेसु ॥
रिक्खंपडि एक्केक्को । उववासो होइ कायव्वो ॥ १६६ ॥
एवं काऊण विहिं । सत्तीए को करीस उज्जवणं ॥
भुंजइ अब्भुदयसुहं । सो पावइ अक्खयं सुक्खं ॥ १६७ ॥

अर्थ-अश्विनी नक्षत्र में उपवास ग्रहण करके २७ सत्ताईस नक्षत्र में प्रत्येक नक्षत्र के दिन उपवास करना चाहिये इसप्रकार उपवास करके जो कोई शक्ति समान उद्यापन करता है वह अभ्युदय और सुख भोग कर मुक्तिपद प्राप्तकरता है-

काऊण अह एयं- । णराणि रइयरणगेसु चत्तारि ॥
एगा पडिवा बीयाउ दुण्णिणतीया उ तिण्णिवा चउत्थीउं ॥
चउरो य पंचमीउं । पंच य छट्ठीउ छट्टेव ॥ १६८ ॥
सत्तेव सत्तमीउं । अट्ठट्ठम्मिर्व य णव य णवमीउं ॥
दसमीउं य तहा ए- । यारस एयारसीउं य ॥ १६९ ॥
बारस य बारसीउं । तेरह तह तेरसीउं णायव्वा ॥
चौदस य चौदसीउं पण्णरसा पुण्णिमाउं य ॥ १७० ॥
उववासा कायव्वा । जहुत्तसंखा कमेण एयासु ॥
एसा णामेण विहि । णेयाउ सुखसंपत्ती ॥ १७१ ॥
एयस्सा संजाइए । फलेण अब्भुदयसुखसंपत्ती ॥
कमसो मुत्तिसुहस्स वि । तह्मा कुज्जा पयत्तेण ॥ १७२ ॥

अर्थ-प्रतिपदा अर्थात पड़वातथि का एक उपवास, द्वितिया के दो उपवास, तीजके तीन, चौथके चार, पंचमी के पांच, छटके छै, सप्तमी के सात, अष्टमी के आठ, नवमी के नौ, दशमी के दश, एकादशीके ग्यारह, द्वादशीके १२, त्रयोदशी के १३, चतुर्दशी के १४, पूर्णमासी के १५, इस प्रकार सिल सिले वार उपवास करै इसको सुख सम्पात्ति व्रत कहते हैं इससे अभ्युदय और सुख सम्पात्ति प्राप्त होती है और इसही से सिल सिलेवार प्रयत्न करनेसे मुक्ति सुख भी प्राप्त होजाता है—

दहिमुहसेलसु पुणो । अंजणजिणचेइएछहं ॥ १७३ ॥
नंदीसरम्मि दीवे । एवं चउसु वि दिसासु कायव्वा ॥
उववासा एस विहि । णंदीसरपंति णामेण ॥ १७४ ॥
जं किंपि देवलोए । महाद्धिदेवाण माणुसाण सुहं ॥
भोत्तूण सिद्धिसोक्खं । पाउणइ फलेण एयस्स ॥ १७५ ॥

अर्थ-एक दिन उपवास करके फिर बीचका दिन छोड़कर तीसरे दिन उपवास करै फिर एक दिन छोड़कर अगले दिन उपवास करै इस प्रकार नंदीश्वर द्वीपके आठ रतिकर पर्वत सम्बंधी जिनेंद्र प्रतिमाके अर्थ आठ उपवास करै और फिर दधिमुख पर्वत सम्बंधी चार उपवास करै फिर अंजनगिर सम्बंधी एक उपवास करै इस प्रकार १३ उपवास एक दिशा के अर्थ करै इसही प्रकार चारोंदिशा सम्बंधी

५२ उपवास करै इसको नंदीश्वर पंक्तिव्रत कहते हैं-इस व्रत के करनेसे महर्द्धिक देव और मनुष्यों का सर्व प्रकारका सुख भोगकर सिद्ध पदका सुख प्राप्त होताहै-

पर्यंतरोववासा । चत्तारी चउदिसासु काऊण ॥
बहं मज्झे चंवं । तिसहियुणो विहिं कुज्जा ॥ १७६ ॥
पढवखे रिण्ववखे । अंहं मउझाम्मि अहयं च तहा ॥
एस विही णायव्वो । विमाणपंति णामेण ॥ १७७ ॥
फलमेयस्सा भोत्तुण । देवमणुसेसु इंदियजं सुखं ॥
पच्छा पावइ मोक्खं । थुणिज्जमाणो सुरिंदेहिं ॥ १७८ ॥

अर्थ-प्रथम एक बेला फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास यह एक पटलका व्रत हुवा इसप्रकार ६१ पटलके व्रत करै अर्थात् एक पटलका व्रतकरके फिर एकासन फिर उपवास फिर बेला फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास फिर एकासन फिर उपवास करै यह दूसरा पटल हुवा इसही प्रकार ६१ पटलके व्रतकरै अन्त में तेला भी करै इसको विमान पंक्ति व्रत कहतेहैं इसमें १९७ दिन लगते हैं इसव्रतके फल से देवगति और मनुष्यगति के सुख मिलते हैं जिनको भोगकर मुक्ति प्राप्त होतीहै जिसकी वंदना स्तुति देवोंके इन्द्रभी करते हैं-

उपसमत्तमेयं । कीरइ अपणं पि जं ससत्तीए ॥
सुत्तोत्तत्तवविहाणं । कायकिलेसुत्ति तं विंति ॥ १७९ ॥

अर्थ-थोड़े से व्रतों का यह वर्णन किया गयाहै, अन्यभी बहुत प्रकार के व्रत शास्त्र में वर्णन किये गयेहैं इनको शक्ति समान करना चाहिये, तपविधान में इसको काय क्लेश समझना चाहिये-

जिणसिद्धसूरिपाठय- साहूणं जं सुयस्स विहवेण ॥
कीरइ विविहा पूजा । वियाण तं पूजणविहाणं ॥ १८० ॥

अर्थ-जिन भगवान्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय साधु और शास्त्रकी विविध प्रकार पूजा करनेको पूजन विधान जानो ॥

णामट्ठवणादव्वे । खित्ते काले वियाण भावे य ॥
छव्विहपूया भणिया । समासउ जिणवरिंदेहिं ॥ १८१ ॥

अर्थ—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव यह छै प्रकार की पूजा जिनेंद्र भगवानने संक्षेपसे कही हैं—

उच्चारिऊण णामं । अरुहाईणं विसुद्धदेसम्मि ॥
पुप्फाणि जं खिविज्जंति । वियरणया णामपूयासा ॥ १८२ ॥

अर्थ—अरहंत आदिक का नाम उच्चारण करके शुद्ध स्थान में पुष्प क्षेपण करना नाम पूजा है—

सब्भावासब्भावा । दुविहा ठवणा जिणेहि पण्णत्ता ॥
सायारवंततवत्थुम्मि । जं गुणारोवणं पढमा ॥ १८३ ॥

अर्थ—सद्भाव और असद्भाव दो प्रकारकी स्थापन जिना भगवान ने कही है, साकार वस्तु में भगवान् के गुणोंका आरोपण करना सद्भावस्थापना है—

अक्खयवराडउ वा । अमुगो एसोत्ति णीयबुद्धीए ॥
संकप्पिऊण वयणं । एसा विणेया असब्भावा ॥ १८४ ॥

अर्थ—अक्षत वा कमल के बीज या किसी फूल में यह संकल्प करना कि यह अमुक देवता है और वैसाही उच्चारण करना इस को असद्भावस्थापना जानो—

हुंडावसप्पिणीए । बिदिया ठवणा ण होदि कायव्वा ॥
लोए कुलिंग मइमो- । हिया जदो होयसंदेहो ॥ १८५ ॥

अर्थ—इस हुंडावसर्पिणी कालमें अतदाकार स्थापना नहीं करनी चाहिये, क्यूंकि अन्य मति वाले भी इस प्रकार की स्थापनाकरते हैं इस कारण बुद्धिको भ्रम उत्पन्न होगा इसमें संदेह नहीं है—

कारावगिंदपडिमा । पइठलक्खणविहि फलं चेव ॥
एदे पंचहियारा । णायव्वा पढमठवणाया ॥ १८६ ॥

अर्थ—सद्भावस्थापना में पांच अधिकार हैं, कारापक अर्थात प्रतिष्ठा करानेवाला, इंद्र अर्थात् प्रतिष्ठाचार्य, प्रतिमा, प्रतिष्ठाके लक्षणकी विधि, और प्रतिष्ठाकाफल—

भागी वच्छलपहा- । वणखमासच्चमद्दवोवेदो ॥
जिणसासणगुरुभत्तो । सुत्ते कारावगो भणिदो ॥ १८७ ॥

अर्थ-भाग्यवान्, वात्सल्यगुणयुक्त, प्रभावनावान, क्षमासत्व, मार्दव गुणवाला, देवगुरुशास्त्रकी भक्ति करनेवाला ऐसा पुरुष कारापक होसक्ताहै यह शास्त्र में कहाहै-

देसकुलजाइसुद्धो । णिरुवमांगो विध्दसम्मत्तो ॥
पढमाणुओगकुसलो । पइट्ठलक्खणविहिविदाणू ॥ १८८ ॥
सावयगुणोववेदो । उवासयज्झयणसत्थथिरबुद्धी ॥
एवंगुणो पइट्ठाइरिउ । जिणसासणे भणिउ ॥ १८९॥

अर्थ-देश, कुल, जाति, आचार, विचार शुद्धहो, सुंदररूपहो, सम्यक्त्व शुद्ध और अतीचार रहितहो, प्रथमानुयोग शास्त्रको अच्छी तरह जानताहो, प्रतिष्ठाकी लक्षण विधिमें विद्वान्हो, जिसमें श्रावक के गुणहैं उस उपासकाध्ययन शास्त्रको भलीभाँति जानताहो, जैन शास्त्रमें प्रतिष्ठाचार्यके यह गुण वर्णन किये गयेहैं-

मणिकणयरयणरुप्पय- । पित्तलमुत्ताहलोवलाईहिं ॥
पडिमालक्खणविहिणा । जिणाइपडिमा घडाविज्जा ॥ १९० ॥

अर्थ-मणि, सोना, रूपा, पीतल, मोती और पत्थर आदिमें जिन भगवान्के लक्षण बनवाकर प्रतिमा बनवावे-

बारहअंगंगी जा । दंसणतिलया चरित्तवत्थहरा ॥
चोद्दहपुव्वाहरणा । ठावेयव्वा य सुयदेवी ॥ १९१ ॥
अहवा जिणागमं पु- । त्थएसु सम्मं लिहाविऊण तउ॥
सुहतिहिलग्गमुहुत्ते । आरंभो होइ कायव्वो ॥ १९२॥

अर्थ-द्वादशांग शास्त्र जिसके अंगहैं, सम्यक् दर्शन जिसका तिलकहै, सम्यक् चारित्र जिसके वस्त्रहैं, और चौदह पूर्व शास्त्र जिसका अलंकार है ऐसी श्रुत देवी प्रथक स्थापन करे वा कोई जैन शास्त्र भले प्रकार लिखवाकर रक्खे, और शुभतिथि शुभलग्न और शुभमहूर्त में आरम्भ करे-

अट्ठदसहत्थमत्तं । भूमिं संसोहिऊण जइणाए ॥
तस्सुवरि मंडउ पुण । कायव्वो तप्पमाणेण ॥ १९३ ॥

अर्थ-अठारह हाथ लम्बी चौड़ी भूमिको यत्नके साथ शुद्ध करके उसके ऊपर उसहीके प्रमाण मंडप बनावे-

चउतोरणचउदारो- । वसोहिउ विविहवत्थकयसूसो॥

धुवंतधयवडाई । णाणापुप्फोवहारड्ढो ॥ १९४ ॥

अर्थ-मंडप ऐसा बनावे जिसके चारोंतरफ चार तोरण (महरावदार दरवाजे) और चारद्वार होवें, जो नाना प्रकार के वस्त्रों से भूषितहों, जिसके ऊपर ध्वजापताका हवासे हिल रहीहों और जिसकी भूमिपर नानाप्रकार के फूल बिखर रहेहों ।

लंबंतकुसुमदामो । वंदणमालाहिभूसियदुवारो ॥
दारुवरि उभयकोणे- ।सु पुण्णकलसेहि रमणीओ॥ १९५ ॥

अर्थ-जिसमें जगह २ फूलोंकी माला लटकरही हों ,जिसका द्वार बन्दन मालाओंसे सजाहुआ हो और जिसके द्वारके दोनों कोणोंपर जलसे भरे हुए कलश रखेहों और उनसे वह शोभनीक होवे ॥

तस्स बहुमज्झदेसे । पइट्ठसत्थम्मि उत्तमाणेण ॥
समचउरस्सं पीठं । सव्वत्थ समं च काऊण ॥ १९६ ॥

अर्थ-तिस मंडपके मध्यमें (बीचों बीच) प्रतिष्ठा शास्त्र में कहे प्रमाण चौकोर और सर्व तरफ से समान ऐसी वेदी बनावे ॥

चउसु वि दिसासु तोरण- । मालोववेददाराणि ॥
छत्तायाराणि तहा । दिढाणि रइऊण कोणेसु ॥ १९७ ॥

अर्थ-तिस वेदीकी चारों दिशामें तोरण और बन्दनमाला कर युक्त चार द्वार बनावे तथा वेदीके चारों कोणोंपर छत्रके आकार सुन्दर गोल चित्रोंकी रचना करे ।

पडिरीण णेत्तपट्टावरोहि । वत्थेहि बहुविहेहि तहा ॥
उल्लोविऊण उवरिं । चंदोवयमणिविहाहिं ॥ १९८ ॥

अर्थ-तिस वेदीके ऊपर नाना प्रकार के सुन्दर चमकीले वस्त्रों से वेष्ठित तथा रत्नो की किरणों से घिरा हुआ अर्थात् रत्नजटित चन्दोआ ताने-

संभूसिऊण चंदउ- । वयण वरेहिं सरलेहिं ॥
मुत्तादामेहिं तहा । किंकिणिमालेहिं विविहेहिं ॥ १९९ ॥

अर्थ-चन्दोआ, उत्तम सरल मोतियोंकी माला और नाना प्रकारकी छोटी २ घंटियोंके समूह से वेदी के ऊपर मंडप शोभित करै-

छत्तेहि य चमरेहि य । दप्पणभिंगारतालवंटेहिं ॥
कलसेहि पुप्फवडिलिय । सुवइट्ठयदीवणिवेहहिं ॥ ४०० ॥

अर्थ-और छत्र, चमर दर्पण, झारी, पंखा, पुष्पमाला गले में पड़े हुए कलश स्वस्तिक (सांतिया) और दीप समूह इन मङ्गलद्रव्योंसे मंडपको भूषित करे ॥

एवं रयणं काउण । तई अब्भंतरम्मि रइऊण ॥
विविहेहिं बहुभंडेहिं । वेईयाचउसु कोणेसु ॥ ४०१ ॥

अर्थ-इसप्रकार ऊपर कहे प्रमाण रचना करके तिस वेदीके अन्दर चारों कोणों में नाना प्रकार के बहुत से बरतन भांडे स्थापित करे।

इंदो तह दायारो । पासुयसलिलेण धारणादियहे ॥
पक्खालिऊण देहं । पच्छा भोत्तूण महुरयणं ॥४०२॥

अर्थ-इसके पश्चात् इन्द्र अर्थात् प्रतिष्ठाचार्य और दाता अर्थात् प्रतिष्ठा करानेवाला यजमान दोनों उपवास से पहिले दिन प्रासुक जल से स्नान करके मधुर अन्नका भोजन करें ॥

उववासं पुण पोसह । विहिणा गहिऊण गुरुसयासम्मि ॥
णवधवलवत्थभूसो । सिरिखंडविलित्तव्वंगो ॥ ४०३ ॥

अर्थ-फिर नवीन उज्ज्वल वस्त्र पहन कर और सर्व अंग में चन्दन का लेप करके गुरुके निकट विधिपूर्वक प्रोषधोपवास ग्रहण करे ॥

आहरणवासियाहि । भूसिययंगो सयबुद्धीए ॥
सक्को हमवियप्पएहिं । विसेज्ज जग्गावणिं इंदो ॥ ४०४ ॥

अर्थ-(इसके पश्चात्) गहने कपडे आदिसे सजाहुआ है अंग जिसका ऐसा वह प्रतिष्ठाचार्य अपने मनमें "मैं इन्द्रहूं" ऐसी कल्पना करता हुआ यज्ञभूमिमें प्रवेश करे।

पुव्वुत्तवेइमज्झे । लिहउज चुण्णेण पंचवण्णेण ॥
पिहुकण्णियं पइट्ठा- । कलावविहिणा सुकंदुत्थं [?] ४०५

अर्थ-पूर्वोक्त वेदीके मध्यमें, पांच वर्णके रत्नोंके चूर्णसे, प्रतिष्ठा शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार, मोटी कर्णिका वाला सुन्दर कमल लेखे।

रंगावलिं च मज्झे । ठविज्ज सियवत्थपरिवुडं पीठं॥

उवदेसेसु तह पइठो- । वयरणदव्वं च ठाणेसु ॥ ४०६ ॥

अर्थ-और रंगावली खेंचकर मध्यभागमें सफेद वस्त्र से ढकी हुई वेदी स्थापित करै और ऊंचे २ स्थानोंपर प्रतिष्ठा के योग्य द्रव्य स्थापन करै।

एवं काऊण तउ । इसाणदिसाए वेइए दिव्वं ॥
रइऊण एहवणपीठं तस्स य मज्झम्मि ठाविज्जो ॥ ४०७ ॥

अर्थ-इस प्रकार कार्य करनेके पश्चात ईशान दिशामें एक सुन्दर वेदी तय्यार करके उसके मध्यमें एक स्नान पीठ (स्नान करानेकी चौकी वा आसन) स्थापन करै।

अरुहाईणं पडिमं । विहिणा संठाविऊण तस्सुवरिं ॥
धूलीकलसाहिसेयं । कराविये सुत्तहारेण ॥ ४०८ ॥

अर्थ-उस स्नान पीठपर श्रीअरहंतादिककी प्रतिमा विधिपूर्वक स्थापन करके तिस प्रतिमा का सूत्रधार (कारीगर) द्वारा धूलीकलश तीर्थक्षेत्र वगैरः की मिट्टी तथा धानके चूर्ण वगैरःसे भराहुआ कलशसे अभिषेक करावै।

वत्थादियसम्माणं । कायव्वं होदि तस्स सत्तीए ॥
पेखणणविहिं ज मंगल- । वयणं कुज्जा तऊ कमसो ॥

अर्थ-फिर उस कारीगर को अपनी शक्तीके अनुसार वस्त्रवगैरः देकर उसका सन्मानकरै और इसके बाद उसको रुखसत करै और मंगल शब्दकरावै।

तप्पाउग्गुवयरणं । अप्पसमीवं णिवसिऊण तउ ॥
अगारसुद्धिं कुज्जा । पइठसत्थुत्तमग्गेण ॥४१० ॥

अर्थ-इसके पश्चात् पहले कहे हुए अर्थात उक्त स्थानमें स्थापित किये हुए प्रतिष्ठा के योग्य द्रव्यको अपने पास रखकर प्रतिष्ठा शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार मंदिर शुद्धि करै-

एवं काऊण रवो । खुहियसमुद्देहि गज्जमाणेहिं ॥
वरभेरिकरडकाहल- । जयघंटासंखणिवहेहिं॥४११॥

अर्थ-इस प्रकार मंदिर शुद्धि करनेके पश्चात उमंडे हुए समुद्र की समान गर्जने वाले बहुतसे नगारे, करड, काहल, जय घंटा और शंखोंका शब्द करावै अर्थात ये बाजे बजवावै।

गुलगुलंतेहि तिविलेहिं । कंसतालेहि झमझमंतेहिं ॥

घुमंतपडहमद्दल- । हुडक्कमुक्खेहि विविहेहिं ॥ ४१२ ॥

अर्थ–गुल गुल शब्द करनेवाले तबले, झम झम शब्द करने वाली कांसी की झांझ और घुम घुम शब्द करने वाले ढोल मृदंग दुंदुभि आदि अनेक प्रकारके बाजे बजावे ।

गज्जंतेहि संधिबंधा- । इएहिं गिएहि बहुपयारेहिं ॥
वीणावंसेहि तहा । भाणयसद्देहिं रम्मेहिं ॥ ४१३ ॥

अर्थ–संधि, बंधन और पड़दे आदि ठिकानों से जिनमें अनेक प्रकारके गीतों की गर्जना निकलती है ऐसी बीण, बांसुरी तथा रमणीक ढोलक बजवावे ।

बहुहावभावविब्भम- । विलासकरचरणणगुवियारेहिं ॥
णच्चंतु णवरसेहि । भिणणाणाडएहि विविहेहिं॥४१४॥

अर्थ–अनेक प्रकारके हाव, भाव, विभ्रम, बिलास तथा हाथ, पैर और शरीरकी मटकाने चटकाने रूप चेष्टा से नवरसयुक्त नृत्य करावे और अनेक प्रकारके भिन्न २ नाटक करावे ।

थोत्तेहि मंगलेहि य । उच्चारसएहि महुरवयणस्स ॥
धम्माणुरायरत्त- । स्स चाउवण्णस्स संघस्स ॥४१५॥
भत्तीए पिच्छमाणस्स । तउ उच्चाइऊण जिणपडिमं ॥
ऊसियासियायवत्तं । सियचामरधुव्वमाणसव्वंगो ॥ ४१६ ॥
आरोविऊण सीसे । काउण पयहिणं जिणगेहस्स ॥
विहिणा ठविज्ज पुव्वु- । त्तवेइमज्झपीठम्मि ॥ ४१७ ॥

अर्थ—इस के पश्चात् धर्म के विषें लवलीन ऐसा जो मुनी आर्यिका, श्रावक श्राविका रूप चार प्रकार का संघ तिसके मंगलीक स्तोत्रों और सैंकड़ों मधुर उच्चारणके साथ श्रीजिनप्रतिमा को जिसके ऊपर सफेद छत्र फैलरहाहै और सर्व अंगपर सफेद चमर दुलरहे हैं, भक्ति पूर्वक उठावे और मस्तकपर धारण करके जिन मंदिरकी प्रदक्षिणा करै और फिर उस प्रतिमाको पूर्वोक्त वेदी के मध्यमे जो पीठ है उसपर बिधि पूर्वकस्थापनकरे ।

चिट्ठेज्ज जिणगुणारो- । वणं कुणंतो जिणंदपडिबिंबे ॥
इट्ठे लग्गस्सुदए । चंदणतिलयं तउ दिज्जा ॥ ४१८ ॥

अर्थ–और जिन प्रतिमा बिषै जिनेंद्र के गुणों का आरोपणकरता

हुआ तिष्ठै पश्चात शुभमुहूर्त में तिस प्रतिमाके मस्तकपर चंदन का तिलक करे ।

सव्वावयवेसु पुणो । मंतरणासं कुणउज पडिमाए ॥

विविहच्चणं च कुज्जा । कुसुमेहिं बहुपयारेहिं ॥ ११९ ॥

अर्थ-इसके बाद प्रतिमाके सर्व अंगोंमें मंत्रोका निक्षेप करै अर्थात् मंत्र लिखे और नाना प्रकारके पुष्पों से अनेक प्रकारका पूजन करे ।

दाऊण मुहपडं धवल- । वत्थजुयलेण मयणफलसहियं ॥

अक्खंयचरुदीवाइ- । धूवेहिं फलेहिं विविहेहिं ॥ १२० ॥

बलिवत्तिएहिं जुवारे- । हि य सिध्दत्थपयणरुक्खेहिं ॥

पुव्वुत्तुवयरणेहि य । रहज्ज पुज्जं सविहवेण ॥ १२१ ॥

अर्थ-इसके अनन्तर दोहरे सफेद वस्त्रसे प्रतिमाको ढांककर अक्षत, नैवेद्य, दीप, धूप और मदनफल सहित नाना प्रकार के फलों वगैरःसे तथा बलि तिल सिद्धार्थ वृक्षकेपत्र और पूर्वोक्त उपकरणों से अपनी शक्ति अनुसार पूजा करे ॥

रत्ति जग्गिज्ज पुणो । तिसट्ठिसलायपुरुससुकहाहिं ॥

संघेण समं पुज्जं । पुणो वि कुज्जा पहायम्मि ॥ १२२ ॥

अर्थ-फिर उस रात्रिको त्रेशठ शलाका पुरुषोंकी कथा वार्ताके साथ जागरण करे और फिर प्रभातको संघके साथ पूजा करे ।

एवं चत्तारि दिणा- । णि जाव कुज्जा तिसंझ जिणपुज्जं ॥

णेत्तुम्मीलणपुज्जं । चउत्थण्हवणं तउ कुज्जा ॥ १२३ ॥

अर्थ-इस प्रकार चार दिनतक तीन २ वक्त श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करे। उसके पश्चात् नेत्रोन्मीलन पूजा तथा चौथा अभिषेककरे

एवं ण्हवणं काउण ! सत्थमग्गेण संघमज्झम्मि ॥

तो वक्खमाणविहिणा । जिणपयपूयाइ कायव्वा ॥ १२४ ॥

अर्थ-इस प्रकार शास्त्रके अनुसार संघके मध्य में (प्रतिमाका) अभिषेक करके उसके पश्चात् आगे कहीहुई विधिके अनुसार जिनेन्द्रके चरणकी पूजा करनी चाहिये ।

गहिऊण सिसिरकरकिर- । णणियरधवलं रयणभिंगारं ॥

मोत्तियपवालमरगय- । सुवण्णमणिखचियवरकंठं ॥ ४२५ ॥
सुयवुत्तकुसुमकुवलय- । रजपिंजरसुरहिविमलजलभरियं ॥
जिणचरण कमल पुरउं । खविज्जउं तिण्णि धाराउं ॥ ४२६ ॥

अर्थ—जो चन्द्रमाकी किरणोंके समूह समान शुक्लवर्ण की धरने वालीहै, जिसका कंठ मोती, मूंगा, मरकत, सुवर्ण और रत्नोंसे जड़ा हुआहै और जिसमें शास्त्र में कहेहुए फूलों और कमलोंके मकरन्द (पराग) से सुगंधित हुआ निर्मल जल भरा हुआहै, ऐसी रत्नझारी हाथमें लेकर श्रीजिनेंद्रके चरणकमल के सन्मुख तीन धारा क्षेपण करे ।

कप्पूरकंकुमायरु- । तरुक्कमिस्सेण चंदणरसेण ॥
वरबहलपरिमलामो- । यवासियासासमूहेण ॥ ४२७ ॥
वासाणुयमसंपत्त- । मयमत्तालिरावमुहरेण ॥
सुरमउडघट्टिचरणं । भत्तीए समलहिज्ज जिणं ॥ ४२८ ॥

अर्थ जिसमें कपूर, केसर, अगर और तरुक्क (एक प्रकारका सुगंध द्रव्य) मिले हुए हैं जिसकी उत्तम बहुतसी सुगंधके प्रमोदसे सर्व दिशा सुगंधित होरही हैं और जिसकी सुगंध से रास्ते में भौंहरे गुंजार कर रहे हैं, ऐसे चंदनके रससे भक्तिपूर्वक श्री जिनेंद्रका, जिनके चरणों पर देवोंके इन्द्र मस्तक रगड़ते हैं स्पर्शन करावे अर्थात् तिस प्रतिमा के गंधलेपन करे ॥

ससिकंतखंडविमलेहिं । विमलजलासित्तअइसुयंधेहिं ॥
जिणपडिमपइट्ठपविजय- । विसुद्धपुण्णंकुरेहिं च ॥ ४२९ ॥
वरकलममसालितंदुल- । चयेहिं सुअक्खियदीहसयलेहिं ॥
मणुयसुरासुरमहियं । पुज्जिज्ज जिणिंदपयजुयलं ॥ ४३० ॥

अर्थ—चंद्रकान्तमणि के खंड प्रमाण स्वच्छ, निर्मल जलसे धोये हुए अत्यंत सफेद और सुगंधित, मानो जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठासे उत्पन्न हुए निर्मल पुण्य के अंकुरही हैं ऐसे, अखंड और लांबे जो उत्तम कलमी धानके चावल हैं उनसे, मनुष्य, सुर और असुरों कर पूजित जो श्री जिनेंद्र के चरण युगल हैं तिनकी पूजा करैं ।

मालइकयंबकणया- । रिअप्पयासोयबलतिलएहिं ॥

मंदारणायचंपय- । पउमुप्पलसिंदुवारेहिं ॥ ४३१ ॥
कणवीरमल्लियाहिं । कंचरणारमचकुंदकिंकराएहिं ॥
सुरवणजजुहीयापारि- । जात्तयजासवणटगरेहिं ॥ ४३२॥
सोवएणरुयमेहिय । मुत्तादामेहि बहुवियप्पेहिं ॥
जिणपयपंकयजुयलं । पुज्जिज्ज सुरिंदसयमहिलं ४३३॥

अर्थ—मालती, कदम्ब, सूर्यमुखी, अशोक, बकुल, तिलक, मन्दार, नागचम्पा, कमल, निगुंडी, कण वीर, मल्लिका, कचनार, मचकुन्द, किंकर, कल्पवृक्ष, जुही, पारिजात, जासवन और तगर वगैरह के फूलों से तथा सोने चांदीके फूलों से और नाना प्रकार के मोतियोंकी मालाओं से देवेंद्रों कर पूजित ऐसे श्रीजिनेंद्र के दोनों चरण कमलकी पूजाकरे ॥

दहिदुग्घसप्पिमिस्सेहिं । कलमभत्तेहिं बहुप्पयारेहिं ॥
तेवहिविंजरोहि य । बहुविहप्पकएणभेएहिं ॥ ४३४ ॥
रौप्पसुवरणकंसा-इथालिणिहिएहि विविहभक्खेहिं ॥
पुज्जं विच्छारिज्जो । भत्तीए जिणिंदपयपुरउ ॥ ४३५॥

अर्थ—दही, दूध और घीसे मिलेहुए नानाप्रकार के चावलों के भातसे, शाक और व्यंजनों से तथा बहुत प्रकार के पकवानोंसे इस प्रकार सोने, चांदी, कांसी वगैरः के थालों में रखे हुए अनेक प्रकार के खाने योग्य पदार्थों से भक्तिपूर्वक श्रीजिनेंद्र के चरणो के आगे पूजा करे ।

दीवेहिं णियप्पहोहामिय- । कगेउहि धूमरहिएहिं ॥
मंदचलमंदाणिल- । वसेण णिच्चं अचणं कुज्जा ॥ ४३६ ॥

घणपडलकम्मणिवह- । व्व दूरमवसारियंधयारेहिं ॥
जिणचरणकमलपुरउ । कुणिज्ज रयणं सुभत्तीए ॥ ४३७ ॥

अर्थ—अपनी प्रभासमूह से सूर्य के समान तेजको धरनेवाले, धूमसे रहित, धीरे २ चलती हुई मन्द पवन से पूजन करनेवालों की तरह नृत्य करते हुए और मेघपटल के समान कर्मरूप अंधकार के समूह को अपने प्रकाश से दूरकरने वाले दीपकों से जिन भगवान् के चरणकमलों के आगे रचना करे अर्थात् दीप से पूजा करे ।

कालायरुणहयंदह । कप्पुरसिल्हारसाइदव्वेहिं ॥
णिप्पयणधूपवत्तिहि । परिमलापत्तयालीहिं ॥ ४१८ ॥
उग्गसिहादेसियस- । ग्गमोक्खमग्गेहि बहलधूमेहिं ॥
धूविज्ज जिणिंदपाया- । रविंदजुयलं सुरिंदणुयं ॥ ४१९ ॥

अर्थ-काला अगरु, अम्बर, कपूर और शिलारस वगैरः द्रव्योंसे बनी हुई, जिसकी सुगंध पर भ्रमर लुब्ध होरहे हैं, और जिस की ऊंची शिखा मानों स्वर्ग मोक्षका मार्ग ही दिखा रही है तथा जिसमें से बहुतसा धुआँ निकलरहा है ऐसी धूपकी बत्तीसे देवों के इन्द्रों कर पूजित जिनेंद्रके दोनों चरणकमलों को सुगंधित करे।

जंबीरमोयदाडिम- । कवित्थपनसनालिएरेहिं ॥
हिंतालतालखज्जू- । रणिंबणारंगचूदेहिं ॥४४०॥
पूईफलतिंदुल आमल-यजंबुविल्लाइसुरहिमिट्ठेहिं॥
जिणपयपुरओ रयणं । फलेहिं कुज्जा सुपक्केहिं ॥ ४४१ ॥

अर्थ-जम्बीर, केला, दाडिम, कपित्थ, पनस, नारियल, हिंताल, ताल, खजूर, किंपूरी, नारंगी, आम, सुपारी, तिन्दुल, आमला, जामन, बिल्व इत्यादिक अनेक प्रकारके सुगंधित, मीठे और पक्के हुए फलोंसे जिनेंद्रके चरणों के आगे रचना करे।

अट्ठविहमंगलाणि य । बहुविहपूजोवयरणदव्वाणि ॥
धूवद्दहणाइ तहा । जिणपूयत्थं वितीरिज्जइ ॥४४२॥

अर्थ-आठ प्रकारके मंगल द्रव्य और अनेकप्रकार पूजाके उपकरण रूप द्रव्य तथा धूपदान वगैरः जिनपूजा करने के वास्ते वितरण करें ॥

एवं चलपडिमाए । ठवणा भणिया थिराए य ॥
णवर विसेसो आगर-सुद्धि कुज्जा सुठाणम्मि॥४४३॥
चित्तपडलेवपडिमा- । ए दप्पणे दाविऊण पडिबिंबं ॥
तिलयं दाऊण तओ- । मुहवत्थं दिज्ज पडिमाए ॥
आगरसुद्धिं च करेज्ज । दप्पणे अहवा अण्णपडिमाए ॥
एत्तियमत्तविसेसो । स विही जाणेह पुव्वो य ॥ ४४४ ॥
एवं चिरंतणाणं । पि कट्टिमाकट्टिमाण पडिमाणं ॥
जं कीरइ बहुमाणं । ठवणापुज्जं हि तं जाणे ॥ ४४६ ॥

अर्थ-इसप्रकार चल प्रतिमाकी स्थापना कही गई है। स्थिर प्रतिमाकी स्थापना भी इसी प्रकार की जाती है केवल इतना विशेष है कि गृहशुद्धि सुस्थानमें करै और चित्रामकी तथा वस्त्र वा भींतपर खेंचीहुई जो जिन प्रतिमाहै तिसका प्रतिबिम्ब दर्पण में दिखकार उसके मस्तकपर तिलक करै और उसके पश्चात वस्त्रसे तिस प्रतिमाको ढांपदेवै। गृहशुद्धि दर्पण में करै अथवा अन्य प्रतिमासे करै केवल इतनाही भेद है अन्य नहीं। बाकी सबविधि वहीहै जो पहिले कहीहै। इसीप्रकार सम्यक् चारित्र, सम्यग्ज्ञान और कृत्रिम अकृत्रिम प्रतिमाओंकी बहुत आदर पूर्वक पूजा की जाती है उसको स्थापनापूजा जाननी चाहिये। (इस विषयका विशेष वर्णन प्रतिष्ठातिलक आदि ग्रंथों से जानना चाहिये)

जे पुव्वसमुद्दिट्ठा। ठवणापुयाए पंच अहियारा॥
चत्तारि तेसु भणिया। अवसाणे पंचमं भणिमो॥ ४४७॥

अर्थ-पहले (गाथा १८७ में) जो स्थापनापूजाके पांच अधिकारोंके नाम कहे गये हैं उनमें से चार अधिकारों का वर्णन तो किया गया अब अन्तमें पांचवे अधिकारका वर्णन करते हैं॥

दव्वेण य दव्वस्सय। जा पूजा जाण दव्वपूजा सा॥
दव्वेण गंधसलिला-। इपुव्वभणियएण कायव्वा॥ ४४८॥

अर्थ-द्रव्यसे और द्रव्यकी जो पूजा की जाती है उसको द्रव्यपूजा समझना चाहिये, द्रव्यसे पूजा पूर्व कहेहुवे जल चंदनादिसे करनी चाहिये।

तिविहा दव्वेपूजा। सचित्ताचित्तमिस्सभेएण॥
पच्चक्खजिणाईणं। सचित्तपूजा जहाजोगं॥ ४४९॥

अर्थ-द्रव्यकी पूजा सचित्त, अचित्त और मिश्र (सचित्ताचित्त) भेदसे तीन प्रकार है। प्रत्यक्ष जिनेंद्र वगैरः की जो पूजाहै वह सचित्त पूजा है।

तेसिं च सरीराणं। दव्वसुदस्स वि अचित्तपूजा सा॥
जा पुण दोण्हं कीरइ। णायव्वा मिस्सपूजा सा॥ ४५०॥

अर्थ-तिन जिनेंद्रदेवोंके शरीरोंकी तथा द्रव्यश्रुत (शास्त्र) की

जो पूजाहै वह अचित्तपूजा जाननी और जो दोनोंकी पूजा की जाती है वह मिश्रपूजा जाननी चाहिये ।

अह वाआगमणोआगमाइ भेएण बहुविहं दव्वं ॥
णाऊण दव्वपूजा । कायव्वा सुत्तमग्गेण ॥ ४५१ ॥

अर्थ-अथवा आगम द्रव्य, नो आगम द्रव्य इत्यादि भेदसे अनेक प्रकार द्रव्यको जानकर शास्त्रमार्गके अनुसार द्रव्यपूजा करनी चाहिये ।

जिणजम्मणणिक्खवण- । णाणुप्पत्तिमोक्खसंपत्ति- ।
णिसिहीसु खेत्तपूजा । पुव्वविहाणेण कायव्वा ॥ ४५२ ॥

अर्थ-जिनेंद्रकी जन्मभूमि, दीक्षाभूमि, केवल ज्ञान उत्पन्न होने की भूमि और मोक्षप्राप्त होने की भूमि, इतने स्थानों में पूर्वकही हुई विधि के अनुसार (जलचंदनादिसे)पूजा करनी चाहिये इस का नाम क्षेत्रपूजा है ।

गब्भावयारजम्मा- । हिसेयणिक्खवणणाणणिव्वाणं ॥
जम्मि दिणे संजादं । जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा ॥४५३॥
इक्खुरससप्पिदहिखी- । रगंधजलपुण्णविविहकलसेहिं ॥
णिसिजागरं च संगी- । यणाडयाईहि कायव्वं ॥ ४५४ ॥
णंदीसरट्ठदिवसे- । सु तहा अण्णेसु उचियपव्वेसु ॥
जं कीरइ जिणमहिमा । विण्णेया कालपूजा सा ॥४५५॥

अर्थ-जिस दिन भगवान्के गर्भावतार, जन्माभिषेक, दीक्षाकल्याण, ज्ञान कल्याण और मोक्षकल्याण हुएहों उस दिन इक्षुरस, घी, दूध, दही और गंध जलसे भरेहुए कलशों से जिनदेवका अभिषेक तथा रात्रिको भगवान्के गुणोंका गान और नाटक आदि सहित जागरण करै। इसी प्रकार नन्दीश्वर पर्वके आठ दिनों में तथा और अनेकपर्वों में जो जिनेंद्रका अभिषेकादि किया जाताहै उसको कालपूजा कहते हैं ।

काऊणाणंतचउ- । ट्ठयाइगुणकित्तणं सुभत्तीए ॥
जं वंदणं तियालं । कीरइ भावच्चणं तं खु ॥ ४५६ ॥

अर्थ-जिनेंद्रके अनंत दर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख औ अनंत वीर्यआदि गुणोंकी उत्तम भक्तिके साथ स्तुति करके जो त्रिकाल

वन्दना कीजाती है वह निश्चयकर भाव पूजा है।

पंचणमोयारोहिं । अहवा जावं कुणिज्ज सत्तीये ॥
अहवा जिणिंदथोत्तं । वियाण भावच्चणं तं पि ॥ ४५७ ॥

अर्थ-अथवा पंचपरमेष्ठी के नमस्कार से अपनी शक्ति प्रमाण जपकरे वा जिनेंद्रका स्तवन (स्तोत्र) करे, तिसको भी भावपूजा कहते हैं।

पिंडत्थं च पयत्थं । रूवत्थं रूववज्जियं अहवा ॥
जं झाइज्जइ झाणं । भावमहं तं विणिद्दिट्ठं ॥ ४५८ ॥

अर्थ-अथवा पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत रूपध्यानों का जो ध्यान करना है तिसका भाव पूजन कहा गया है ॥

सियकिरणविप्फुरंतं । अट्ठमहापाडिहारिपरियरियं ॥
झाइज्जइ णियरूवं ॥ पिंडत्थं जाण तं झाणं ॥ ४५९ ॥

अर्थ-अशोकवृक्ष, पुष्पवृष्टि आदि आठ महाप्रतिहार्यों से युक्त और चंद्रमाकी किरण समान प्रकाशमान ऐसा जोकेवली भगवान्का रूपहै तिसकी निजरूप भावना करके (अपना पिंड तैसाही है ऐसा मनमें जानकरके) जो ध्यान करना है उसको पिंडस्थ ध्यान जानना चाहिये।

अहवा णाहिं च वियप्पिऊण मेरु अहोविहायम्मि॥
झाइज्ज अहोलोयं । तिरियम्मि तीरियं वीयं ॥ ४६० ॥
उड्ढम्मि उ णरलोए । कप्पविमाणाणि खंदपरियंते ॥
गेविज्जाणवगीवं । अणुदिसं हणुपएसम्मि ॥ ४६१ ॥
विजयं च वैजयंतं । जयंतमवराजियं च सव्वत्थं ॥
झाइज्ज मुहपएसे । ललाटदेसम्मि सिद्धसिला ॥ ४६२ ॥
तस्सुवरि सिद्धणिलयं । जयसिहरं जाण उत्तमंगम्मि ॥
एवं जं णियदेहं । झाइज्जइ तं पि पिंडत्थं ॥ ४६३ ॥

अर्थ-अथवा अपने नाभि स्थान में मेरु पर्वतकी कल्पना करके उसके नीचे अधोलोक का चिन्तवन करे, नाभि के तिर्यक भाग में मध्यलोक की और नरलोक से ऊपर स्कंध (कंधा) पर्यंत स्वर्गलोक के विमानोंकी भावनाकरैतथा ग्रीवामेंनौ ग्रैवेयकोंकी, हनुप्रदेशठोडीमें अनुदिशकी और मुखमें विजय, वैजयंतजयंत, अपरा-

जित और सर्वार्थसिद्धि इन विमानों की भावना करै और ललाट (कपाल) में सिद्धशिला और तिसके ऊपर अर्थात् मस्तक पर जगत्का शिखर अर्थात अग्रभाग ऐसा सिद्धस्थानको जानै इस प्रकार जो निज देहका ध्यान करना है उसको भी पिंडस्थ ध्यान कहते हैं ॥

जं झाइज्जइ उच्चा- । रिऊणपरमेट्ठिमंत पयकमलं ॥
एयक्खरादि विविहं । पयत्थझाणं मुणेयव्वं ॥ ४१४ ॥

अर्थ—एक अक्षरको आदि देकर अनेक प्रकार परमेष्ठीके मंत्र का उच्चारण करके परमेष्ठी के चरणकमल का जो ध्यान किया जाताहै उसको पदस्थध्यान जानना चाहिये ॥

भावार्थ—ॐ, सिद्ध, अर्ह अरहंत, असिआ उसा, अरहंतसिद्ध, "अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय साहू" वा "अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यो नमः" और "णमो अरहंताणं,णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं" इत्यादि मंत्रों का जो ध्यान करनाहै वह पदस्थो ध्यान है ॥

सुण्णं अयारपुरओ । झाइज्जो उड्ढरेह बिंदुजुयं ॥
पावांधयारमहणं । समंतओ फुरियससिसमं ॥ ४१५ ॥

अर्थ—अकारके आगे ऊर्ध्वरेफ व बिन्दु (अनुस्वार) इनसे युक्त तथा पापरूपी अंधकारका नाशकरनेवाला और चन्द्रमाकी समान चहुंओरसे प्रकाशमान ऐसाजो हकार (अर्हं) है वह ध्यान करने योग्यहै ॥

असिआउसासुवण्णा । झायव्वागंतसत्तिपणणाउ ॥
चउपत्तकमलमज्झे । पढमाइकमेण णिसिऊण ॥ ४१६ ॥
ते चिय वयणा अह- । दलपंचकमलाण मज्झदेसेसु ॥
णिसिऊण सेसपरमे- । ट्ठि अक्खरा चउसु पत्तेसु ॥ ४१७ ॥
रयणत्तयपढमा ए । वयणा णिसिऊण सेसपत्तेसु ॥
सिरवयणकंठहियए । णाहिपएसम्मि झायव्वा ॥ ४१८ ॥
अहवा णिलाडदेसे । पढम बिदियं विसुद्धदेसम्मि ॥
दाहिणदिसाइ णिसिऊ- । ण सेसकमलाणि झाइज्जो ॥ ४१९ ॥

अर्थ-जिनकी शक्ति अनंत है ऐसे अ सि आ उ सा ये पांच उत्तम वर्ण चार पांखडीके कमलमें क्रम से स्थापन करके अर्थात् कमल के मध्यभाग कर्णिकामें "अ" (अरहंत) तिसके बाहर पूर्वके पत्रपर 'सि' (सिद्ध) दक्षिणके पत्रपर 'आ' (आचार्य) पश्चिमके पत्रपर 'उ' (उपाध्याय) और उत्तरकी ओरके पत्रपर 'सा' (साधु) ऐसे क्रमसे स्थापन करके तिनका ध्यान करै। और तिनही अक्षरोंको आठ पांखडीके कमलमें (चार पांखडीके कमल प्रमाण) स्थापन करके बाकीके चार पत्रोंमें 'द' (दर्शन) ज्ञा (ज्ञान) चा (चारित्र) त (तप) ये चार वर्ण क्रमसे स्थापन करके मस्तक, मुख, कंठ, हृदय और नाभि इन पाँच स्थानोंमें पाँच अष्टदल कमलका ध्यान करै अथवा पहला कमल कपालपर स्थापन करके बाकीके कमल मस्तक पर व तिसके दक्षिण आदि शुद्ध प्रदेशोंमें स्थापन करके तिनका ध्यान करना चाहिये।

अट्ठदलकमलमज्झे। झायव्व इ दुरेहबिंदुजुयं ॥
सिरिपंचणमोकारे। हिं वलइयं पत्तरेहासु ॥ ४७० ॥
णिसिऊण णमो अरहं-। ताणं पत्ताइमट्ठवग्गेहिं ॥
भणिऊण वेढिऊण य। मायाबीएण मं तिकुणं ॥ ४७१ ॥

अर्थ-आठ पांखडीके कमलकी कर्णिका पर दो रेफ और एक बिंदु इनसे युक्त ऐसा 'ह' (र्ह्रं) स्थापन करके और तिस कर्णिकाके बाहर पत्रोंके भीतर वलय करके तिस वलयमें 'णमोअरहंताणं' इत्यादि पंच नमस्कार मंत्र वलयाकार स्थापन करै और आठ पत्रों पर क्रमसे आठवर्ग स्थापन करके तथा त्रिकोणको श्रीबीज से वेष्टित करके तिस कमलका ध्यान करै।

आयासफलिहसंणिह-। तणुप्पहासलिलणिहिणिवुड्डंतं ॥
णरसुरतिरीडमणिकिर-। णसमूहरंजियपयंबुरुहो ॥ ४७२ ॥
वरअट्ठपाडिहारेहिं। परिउडो समवसरणमज्झगउ ॥
परमणंतचउ-। ट्ठयाणिउ पवणमग्गट्ठो ॥ ४७३ ॥
एरिस उक्कित्त परि-। वारवडिअउ खीरजलहिमज्झे व ॥
वरखीरधवलकंदु-। स्सकधिण्णयामज्झदेसत्थो ॥ ४७४ ॥
खीरवहिसलिलधारा-। हिसेयधवलीकयंगसव्वंगो ॥

जं झाभज्जइ एवं । रूवत्थं जाण तं झाणं ॥ ४७५ ॥

अर्थ-जोआकाश तथा स्फटिकमणिकी समान स्वच्छ और निर्मल अपनी देहकी कान्तिरूपी समुद्र में निमग्नहै तथानम्रीभूतहुए जो मनुष्य व बदे तिनके मुकुटोंके रत्नोंकी किरणोंसे जिसके चरण कमल चित्रविचित्र रंगके दिखाईदेतेहैं, जो उत्तम आठ प्रातिहार्योंसे वेष्टित, समवसरणके मध्यमें प्राप्त आकाशमें स्थित तथा परिवार करके रहित है और उत्तमशुक्ल वर्णके कमलकी कर्णिका पर विराजमानहुआ ऐसामालूमहोताहै मानों क्षीरसमुद्रके मध्यमें स्थित है तथा क्षीरसमुद्रकी जलधाराके अभिषेकसे जिसकासर्व अंग धवल (शुक्लवर्ण) होगयाहै, ऐसा अनंत चतुष्टयसे युक्त जो उत्कृष्ट परमात्मा है तिसका जो इस प्रकार ध्यान करनाहै उसको रूपस्थ ध्यान जानना चाहिये ।

वण्णरसगंधफासे- । हिं वज्जिओ णाणदंसणसरूओ ॥
झाइज्जइ एवं जं । तं झाणं रूवरहियेत्ति ॥ ४७६ ॥
अहवा आगमणोआ- । गमाइभेएहिं सुत्तमग्गेण ॥
णाऊण भावपूजा । कायव्वा देसविरएहिं ॥ ४७७ ॥

अर्थ-वर्ण (रङ्ग), रस, गंध और स्पर्श, इनसे रहित और ज्ञानदर्शनस्वरूप अर्थात् रूपरहित ऐसे आत्माके शुद्ध स्वरूपका जो चिन्तवन करना वह रूपातीत ध्यानहै । अथवा आगम नोआगम आदिके भेदसे अनेक प्रकारकी भाव पूजा शास्त्रके आधारसे जान कर देशव्रती श्रावकोंको करनी चाहिये ।

एसा छव्विहपूजा । णिच्चं धम्माणुरायरत्तेहिं ॥
जहजोग्गं कायव्वा । सव्वेहिं देसविरएहिं ॥ ४७८ ॥

अर्थ-यह छः प्रकारकी पूजा धर्मके विषय अनुराग रखने वाले समस्त देशव्रती श्रावकोंको नित्य विधिपूर्वक करनी चाहिये ।

एयारसंगधारी । जीहसहस्सेण सुरणरिंदो वि ॥
पूजाफलं ण सक्को । णिस्सेसं वण्णिउं जह्मा ॥ ४७९ ॥
तह्मा हं णियसत्तीए । थोयवयणेण किं पि वोच्छामि ॥
धम्माणुरायरत्तो । भवियजणो होइजे सव्वो ॥ ४८० ॥

अर्थ-ग्यारेह अङ्गके जानने वाले मुनि तथा देवोंके इन्द्रभी हजार

जिह्वासे पूजाके फलको पूरा वर्णन करनेको समर्थ नहीं हैं । मैं अपनी शक्तिप्रमाण थोड़े वचनोंमें कुछ कहता हूँ (तिसको सुन कर) समस्त भव्यजीव धर्मके विषय प्रीति करने वाले होवें ।

कुंथुंभरिदलमेत्ते । जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिमं ॥
सरिसवमेत्तं पि लहइ । सो णरो तित्थयरं पुण्णं ॥ ४८१ ॥

अर्थ–जो मनुष्य कुन्थुम्भरीके पत्र बराबर जिनमंदिर बनाकर उसमें सरसोंके बराबरभी जिनप्रतिमा स्थापन करता है वह तीर्थंकर पदके प्राप्त होने योग्य पुण्य उपार्जन करता है ।

जे पुण जिणंदभवणं । समुण्णयं परिहितोरणसमग्गं ॥
णिम्मावइ तस्स फलं । को सकइ वण्णिउं सयलं ॥ ४८२ ॥

अर्थ–फिर जो प्राकार (चहारदीवारी) तोरण आदिसे पूर्ण और ऊँचा ऐसा जिनमंदिर बनाताहै तिसका पूरा फल वर्णन करनेके लिये कौन समर्थ होसकता है ।

जलधाराणिक्खवणे- । ण पावलसोहणं हवे ॥
णियमण चंदणलेवेण । णरो जायइ सोहग्गसंपण्णो ॥४८३ ॥

अर्थ–पूजाके समय जलधाराके छोड़नेसे पापका मैल धोया जाताहै और चंदनका लेपन करनेसे पूजनकरनेवाला भाग्यवान् होताहै–ऐसा नियम जानना ।

जायइ अक्खयणिहिरय- । णसामिओ अक्खएहि अक्खोहो ॥
अक्खीणलद्धिजुत्तो । अक्खयसोक्खं च पावेई ॥४८४॥

अर्थ–अक्षतसे पूजाकरनेवाला ९निधि और १४रत्नों का स्वामी होता है उसको अक्षय आनन्द मिलता है अर्थात उसके आनन्दमें कभी भंग नहीं पड़ता है और वह अक्षीणलब्धि पाकर मोक्षपदभी प्राप्त करताहै ।

कुसुमेहिं कुसेसयवयण- । तरुणीजणणयणकुसुमवरमाला- ॥
वलयेणच्चियदेहो । जायइ कुसुमाउहो चेव ॥ ४८५ ॥

अर्थ–पुष्पसे पूजाकरनेवाला मनुष्य, कमलकी समान सुंदर मुखवाली स्त्रियोंके नेत्ररूपी पुष्पमालासे जिसकीदेह पूजीगईहै अर्थात् तरुण स्त्रियां जिसको आदरकी दृष्टिसे देखती है ऐसाकामदेव होताहै ।

जायइ णिविज्जदाणे- । ण सत्तिगो कंतितेयसंपण्णो ॥
लायण्णजलहिवेला- । तरंगसंपाविसरीरो ॥ ४८६ ॥

अर्थ-नैवेद्य अर्पण करने वाला मनुष्य, शक्तिमान, कांतिमान, तेजस्वी और सौन्दर्य रूपी समुद्रकी तरंगोंसे जिसका अंग भीज-गयाहै ऐसा अर्थात् अतिसुंदर होताहै।

दीवेहिं दीवियासे- । सजीवदव्वाइतत्तसब्भावो ॥
सब्भावजणियकेवल- । पईवतेएण होइणरो ॥ ४८७ ॥

अर्थ-दीपसे पूजाकरने वाला मनुष्य, उत्तम भावों के योगसे उत्पन्नहुआ जो केवलज्ञानरूपी सूर्य जिसके तेजसे समस्त जीवादि तत्वोंके प्रकाश करने वाला अर्थात् केवलज्ञानीहोता है।

धूवेण सिसिरयरधव- । लकित्तिधवलियजयत्तओ पुरिसो ।
जायइ फलेहि संप । त्तपरमनिव्वाणसोक्खफलो ॥ ४८८ ॥

अर्थ-धूपसे पूजा करनेसे मनुष्य, चन्द्रमाकी किरण समान निर्मल कीर्त्तिसे स्वच्छ किया है तीन जगत जिसने अर्थात जिसकी पुण्य कीर्ति तीन जगतमें फैल रहीहै ऐसा होता है और फलकर पूजा करनेसे परम निर्वाण सौख्य रूपी फलका प्राप्त करनेवाला अर्थात् मुक्त होता है।

घंटाहिं घंटासद्दा- । उलेसु पउरच्छराणमज्झम्मि ॥
संकीडइ सुरसंघा- । यसेविओ वरविमाणेसु ॥४८९॥

अर्थ-जिन मंदिरमें घंटा अर्पण करनेवाला मनुष्य, घंटोंके शब्द से व्याप्त जो स्वर्गोंके विमान तिनमें देवोंके समूहसे सेवा किया गया अर्थात् इन्द्र होकर बहुतसी अप्सराओंके मध्यमें क्रीड़ा करता है।

छत्तेहि एयछत्तं । भुंजइ पुहवी सवत्तपरिहीणो ॥
चामरदाणेण तहा । विज्जिज्जइ चमरणिवहेहिं ॥ ४९० ॥

अर्थ-छत्र अर्पण करनेसे मनुष्य (अन्यजन्ममें) शत्रु रहित राजा होकर पृथिवीका एकछत्र राज्य भोग करताहै और चमरके दान करनेसे चमरोंसे सेवा कियाजाताहै अर्थात् राजा होताहै।

अहिसेयफलेण णरो । अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरिं ॥
खीरोयजलेण सुरिं- । दप्पमुहदेवेहिं भत्तीए ॥ ४९१ ॥

अर्थ-जिनेंद्रका अभिषेक करनेके फलसे मनुष्य (अन्यजन्ममें) सुदर्शन मेरुपर सुरेन्द्र वगैरः देवोंसे भक्तिपूर्वक क्षीर समुद्रके जल से अभिषेक किया जाताहै अर्थात तीर्थंकर होताहै।

विजयपडाएहिं णरो। संगाममुहेसु विजइ ओ होइ॥
छक्खंडविजयणाहो। णिप्पडिवक्खो जसस्सी य॥ ४९२॥

अर्थ-श्री जिनमंदिर में विजयपताका अर्पण करने से मनुष्य संग्राम में विजय प्राप्त करने वाला होता है और षट्खंड का विजय करने वाला, शत्रुरहित व यशस्वी ऐसा राजा अर्थात चक्रवर्ती होता है।

किं जंपिएण बहुणा। तीसु वि लोएसु किंपि जं सोक्खं॥
पूजाफलेण सव्वं। पाविज्जइ णत्थि संदेहो॥ ४९३॥

अर्थ-बहुत कहनेसे क्याप्रयोजन? तीनलोकमें जितना कुछभी सुखहै वह सब जिनपूजाके फलसे प्राप्तहोताहै, इसमें सन्देह नहींहै।

अणुपालिऊण एवं। सावयधम्मं तओवसाणम्मि॥
सल्लेहणं च विहिणा। काऊण समाहिणा कालं॥ ४९४॥
सोहम्माइसु जायइ। कप्पविमाणेसु अच्चयंतेसु॥
उववायगिहे कोमल-। सुयंधसिलसंपुडस्संते॥४९५॥

अर्थ-इसप्रकार श्रावकधर्म को पालन करके, अन्त में विधिपूर्वक सल्लेखना करके शांतचित्त से देहका त्याग करने वाला श्रावक सौधर्म आदि अच्युत स्वर्गपर्यंत किसी एक स्वर्ग विमान में जाकर वहांपर जो उपपाद गृह है तिसमें कोमल व सुगंधशिला के सम्पुट में जन्मलेता है।

अंतोमुहुत्तकाले-। ण तओ पज्जत्तिओ समाणेइ॥
दिव्वामलदेहधरो। जायइ णवजुव्वणो चेव॥ ४९६॥

अर्थ-जन्मलेने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकाल में (अहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन छहों) पर्याप्ति को प्राप्त होकर सुन्दर पवित्र देहका धरने वाला और नवयौवनवान् (जवान) होजाता है।

समचउरसंठाणो। रसाइधाऊहिं वज्जियसरीरो॥
दिणयरसहस्सतेओ। णवकुवलयसुरहिणिस्सासो॥ ४९७॥

अर्थ-तिस देवका शरीर समचतुर संस्थान को लिये हुए होता है और रस, रुधिर, मांसादिक सप्तधातु से रहित होता है तथा वह देव हजारों सूर्योंके तेजप्रमाण तेजस्वी और नवीन कमलों की गंधप्रमाण सुगंधित सांसका लेनेवाला होता है।

परिबुज्झिऊण सुत्तु- । त्थिव्व संखाइमहुरसद्देहिं ॥
दट्ठूण सुरविभूई । वंभियहियउ पलोएइ ॥ ४९८ ॥

अर्थ-(पश्चात् वह देव वहांपर) शंखवगैरः के मधुर शब्दों से सोकर उठेहुए की तरह जागकर, देवलोक की विभूतिको देखकर चकितचित्त होकर चारों तरफ देखता है।

किं सुमिणदंसणमिणं । ण वेति जा चिंतए वियप्पेण ॥
आयंति तक्खणं चिय । थुइमुहला अयाररक्खाई ॥ ४९९ ॥

अर्थ-और क्या यह मुझको स्वप्न दिखाई देता है ? या स्वप्न नहीं है अर्थात् वास्तव में ही ऐसा है, इसप्रकार विकल्प करता हुआ तिष्ठता है, इतने ही में उसीवक्त उस विमान के रक्षक वगैरः देव उसकी स्तुति करते हुए आते हैं।

जयजीवणंदवद्धा- । इचारुसद्देहि सो परम्मेहिं ॥
अच्छरसयाउ विसउ । कुणंति चाडूणि विविहाणि ॥ ५०० ॥

अर्थ-तुम जयवंत प्रवर्तो, जीवन्तरहो, आनंद तथा वृद्धिको प्राप्त होवो इत्यादि कानों को प्यारे लगने वाले सुन्दर शब्दों से सैंकड़ों अप्सराएं भी अनेक प्रकारसे तिसको आनंदित करती हैं॥

एवं थुणिज्जमाणो । सहसा णाऊण उवहिणाणेण ॥
गंतूण ण्हाणगेहं । उत्तमवाविम्मि ण्हाऊण ॥ ५०१ ॥
आरहणगिहम्मि तउ । सोलहसाहूसणं च गहिऊण ॥
पूजोवयरणसहिउ । गंतूण जिणालयं सहसा ॥ ५०२ ॥
वरवज्जविविहमंगल- । रवेहिं गंधक्खयाइदव्वेहिं ॥
महिऊण जिणवरिंदं । थुत्तसहस्सेहिं थुणिऊण ॥ ५०३ ॥
गंतूण सभागेहं । असेसमुरसंकुलं परमरम्मं ॥
सिंहासणस्स उवरिं । चिट्ठइ देवेहिं थुव्वंतो ॥ ५०४ ॥
उस्सियसियायवत्तो । सियचामरधुव्वमाणसव्वंगो ॥
पउरच्छराहिं कीडइ । दिव्वट्ठगुणप्पहावेण ॥ ५०५ ॥

अर्थ-इसप्रकार देव, देवांगनाओंसे स्तुति किये जानेपर वह

देव शीघ्रही अवधिज्ञान से अपना सब वृत्तान्त जानकर, स्नान-गृह में जाकर वहां स्नान वापिका (बावड़ी) में स्नान करता है और वहां से आभरणगृह में जाकर सोलह प्रकार के आभूषण (गहने) धारण करनेके पश्चात् पूजाके योग्य उपकरण लेकर शीघ्रता के साथ श्रीजिनमन्दिर को जाता है और वहां पर उत्तम वादित्रों (बाजे) व नाना प्रकार के मंगल शब्दोंके साथ गंध अक्षतादि द्रव्योंसे श्रीजिनेंद्रका पूजन करने और हजारों स्तोत्रों से भगवान्‌की स्तुति करने के पश्चात्, अनेक देवोंसे भरपूर और परमरमणीक ऐसाजो सभागृह है तिसमें प्रवेश करके देवों से स्तुतिकिया जाता हुआ सिंहासनपर बैठता है। तिससमय सफेद छत्र उसके मस्तकपर बिराजताहै और समस्त अंगपर सफैद चमर ढुलते हैं। और फिर देव वहांपर बहुतसी अप्सराओंसे क्रीडाकरता है। और अपने दिव्य अणिमा आदि अष्ट गुणोंके प्रभावसे ॥

दीवेसु सायरेसु य । सुरसरितीएसु सेलसिहरेसु ॥
अक्खलियगमणागमणो । देवुज्जाणाइसु रमेइ ॥ ५०६ ॥

अर्थ-द्वीपों, समुद्रों, गंगाआदिनदियोंके तटों, पर्वतोंके शिखरों और नन्दनवन आदि उद्यानों केविषै, गमनागमनका प्रतिबंध(रोक) न होनेसे (यथेच्छ) क्रीडा करताहै । और

आसाढकत्तिए फ- । ग्गुणे य णंदीसरह्रदिवसेसु ॥
विविहं करेइ महिमं । णंदीसरचेइयागेहेसु ॥५०७॥
पंचसु मेरुसु तहा । विमाणजिणचेइएसु विविहेसु॥
पंचसु कल्लाणेसु य । करेइ पुज्जं बहुवियप्पं॥५०८॥
इयाइबहुविणोए- । हि तत्थ वि रोऊण सग्गहिं ॥
तत्तो उव्वइ समाणो । चक्कहराइसु जाएइ॥५०९॥

अर्थ-आषाढ, कार्तिक और फाल्गुन इनतीन महीनों के विषैं नन्दीश्वर पर्वके आठ दिनों में नन्दीश्वरद्वीपके चैत्यालयोंमें जाकर अनेक प्रकारकी पूजाकरताहै और इसीप्रकारके पंचमेरु,अनेकप्रकार विमानोंके जिनबिम्बतथा जिनेश्वरके पंचकल्याणक इनठिकानोंमें जाकर अनेक प्रकारकी पूजाकरता है। इन (अनेक प्रकारकी पुण्य

कारक व आनंद कारक क्रियाओं) को आदि देकर बहुत आनंद के साथ स्वर्गमें अपनी स्थिति को पूरी करके वहांसे चयकर मध्य लोकमें आकर चक्रवर्त आदि पदवीधारक पुरुषोंमें जन्म लेता है अर्थात् चक्रवर्त आदि राजपदवीका धारक होता है।

मोत्तूण मणुयसोक्खं । पस्सिय वेरग्गकारणं किंचि ॥
मोत्तूण रायलच्छी । तणं व गहिऊण चारित्तं ॥ ५१० ॥
काऊण तवं घोरं । लद्धीउ तप्फलेण लधूण ॥
अठ्ठगुणीसरियं तं । च किंण सिज्झइ तवेण जए ॥ ५११ ॥

अर्थ-(इसके पश्चात यह महात्मा) मनुष्यलोकके सुखोंको भोगकर किंचित् वैराग्यका कारण पाकर राज्यलक्ष्मीको तृणसमान त्यागकर जिन दीक्षाधारण करके तीव्रतपश्चरण करताहै और तिस तपके फलसे ऋद्धियोंको पाकर अणिमा आदि अष्टगुणोंके ऐश्वर्यको प्राप्तहोताहै। वहकौनसीवस्तु है जो तपसे सिद्धनहींहोती ? अर्थात् ऐसा कोई भी कठिनकार्य नहींहै जो तपसे सिद्धनहोसके।

बुद्धी तवो वि लद्धी । विउव्वण लद्धी तहेव उसहीया ॥
रसबलअक्खीणा वि य । रिद्धीउ सत्त पण्णत्ता ५१२ ॥

अर्थ-बुद्धि ऋद्धि, तपऋद्धि, विक्रिया ऋद्धि, औषधि ऋद्धि, रस ऋद्धि, बल ऋद्धि और अक्षीणमहानस ऋद्धि, ऐसे सातप्रकार की ऋद्धि कहीगई हैं।

अणिमा महिमा लघिमा । पागम्मि वसित्त कामरूवित्तं ॥
ईसत्तपावणं तह । अठ्ठगुणा वण्णिया समये ॥ ५१३ ॥

अर्थ-अणिमा (सूक्ष्महोना) महिमा (बड़ाहोना) लघिमा हलकाहोना), प्राकाम्य, वशित्व (वशकरना), कामरूपित्व (इच्छा के अनुसाररूप बनालेना), ईशत्व (प्रभुपणामिलना). और प्राप्यत्व (जोचाहे प्राप्तकरलेना) ये, आठगुणशास्त्रमें वर्णन कियेगयेहैं।

एवं काऊण तवं । पासुयठाणम्मि तहय गंतूण ॥
पालियकं बंधित्ता ॥ काउस्सग्गेण वा ठिच्चा ॥ ५१४ ॥
जइ खाइयसद्दिठ्ठी । पुव्वं खविया उ सत्तपयडीउ ॥
सुरणिरयातिरिक्खाऊ । णत्थि भवे णिठ्ठिये चेव ॥ ५१५ ॥
अह वेदगसद्दिठ्ठी । पमत्तठाणम्मि अप्पमत्ते वा ॥
खविऊण धम्मझाणं । सत्तवि णिट्ठवइ पयडीउ ॥ ५१६ ॥

अर्थ-इसप्रकार (वह मुनि) तपश्चरणकरके तथा प्रासुकस्थानमें आकर पर्यंकासन बांधकर या कायोत्सर्गरूपसे स्थितहोकर, यादि पहले सात प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायक सम्यग्दृष्टि होगया हो तो देव नारक और तिर्यंच इन तीनआयुका उसी भवमें नाश करताहै और जो वेदक सम्यग्दृष्टिहोतो प्रमत्त वा अप्रमत्त गुण स्थान में धर्म ध्यानका आश्रय करके सातही प्रकृतियों का नाशकरताहै। और

काऊण पमत्तेयर-। परियं तसयाणि खवइ पाउग्गो ॥
होऊण अप्पमत्ता। विसोहि पाऊरिऊण खणं ॥५१७॥
करणं अधापवत्तं। पढमं पडिवज्जिऊण सुक्कं च ॥
जायइ अपुव्वकरणो। कसायखवणुज्जउ वीरो ॥ ५१८॥
एक्केक्कं ठिदिखंडं । पाडइ अंतोमुहुत्तकालेण ॥
ठिदिखंडपडणकाले। अणुभागसयाणि पाडेई ॥ ५१९ ॥
गच्छइ विसुद्धमाणो। पडिसमयमणंतगुण विसोहीए ॥
लद्धीए अणियट्टिगुणं। तत्थ वि सोलह पयडीइ ५२० ॥

अर्थ-अप्रमत्त गुणस्थान के चढने पर्यंत प्रायोग्यलब्धि के बल से त्रसकाय वगैरः कर्म प्रकृतियों का नाश करके अप्रमत्तगुणस्थान वर्ती होता है। उसके पश्चात् अत्यंत शुद्धता को प्राप्त होकर वह अप्रमत्त साधु एक क्षण में अधःप्रवृत्तकरण नाम का पहला करण और प्रथम शुक्ल ध्यान (पृथक्त्ववितर्कविचार) को अंगीकार करके अपूर्व करणको प्राप्त होता है। और कषायोंके नाश करने में उद्यमी हुवा वह वीर अन्तर्मुहूर्तकालमें स्थिति बांधके एक एक खंडका नाश करता है। स्थितिबंध के एक खंडके पतन (नाश) होते समय अनुभाग बंधके सैंकड़ों खंड पतनको प्राप्त होजाते हैं। इस प्रकार प्रतिसमय अनंतगुणा विशुद्ध होता हुआ विशुद्धलब्धिके बलसे वह साधु अनिवृत्त गुणस्थान को प्राप्त होता है और वहांपर सोलह प्रकृतियों का नाश करता है।

अट्ठकसाये च तउ। णपुंसयं तहेव इत्थीवेयं च ॥
छण्णोकसायपुरिसं। कमेण कोहं पि संछुहई ॥ ५२१ ॥
कोहं माणं माया। एवं पि छुहइ लोहम्मि ॥
बायरलोहं पि तउ। कमेण णिहणइ तस्येव ॥ ५२१ ॥

अणुलोहं वेयंतो । संजायइ सुहुमसंपरायो सो ॥
खविऊण सुहुमलोहं । खीणकसाउं तउ होई ॥ ५२३ ॥
तत्थेव सुक्कझाणं। विदियं पडिवज्जिऊण तो तेण ॥
णिद्दापयलाउ दो । चरमसमयम्मि पाडेई ॥ ५२४ ॥
णाणंतरायदसयं। दंसणचत्तारि चरमसमयम्मि ॥
हणिऊण तक्खणे चिय । सजोगकेवलिजिणो होइ ॥ ५२५ ॥

अर्थ-इसके पश्चात् (प्रत्याख्यान व अप्रत्याख्यान रूप क्रोध, मान, माया, लोभके भेदसे) आठ कषायों का नाश करता है और तैसे ही नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छै नोकषाय (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा) और पुरुषवेद इनका क्रमसे नाश करता है और क्रोधका भी नाश करता है । तथा सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में क्रोध, मान, माया और लोभमें से बादर लोभ इनका पूर्ण नाश करके सूक्ष्म लोभका अनुभव करने वाला वह साधु सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानवर्ती होता है । इसके अनन्तर सूक्ष्मलोभ को भी नाश करके क्षीणकषाय नाम का जो बारहवां गुणस्थान है तिसको प्राप्तहोता है और वहांपर दूसरे शुक्ल ध्यान (एकत्व वितर्कविचार) को प्राप्त होकर तिसके योगसे निद्रा और प्रचला इन दो कर्मोंका अन्तसमयमें नाश करता है और इसीप्रकार ज्ञानावरणकी पांच व अन्तरायकर्म की पांच और दर्शनावरणकर्मकी चार प्रकृति बारहवें गुणस्थान के अन्त समय में नाशकरके तत्काल वह संयोगकेवली जिन अर्थात् १३ वां गुणस्थानवर्ती होताहै ।

सो सो तियालगोयर- । अणंतगुणपज्जयपयत्थं ॥
जाणइ पस्सइ जुगवं । णवकेवललद्धिसंपण्णो ॥ ५२६ ॥

अर्थ-तब ९ प्रकारकी केवललब्धिका स्वामी हुआ वह केवली जिन तीन कालके अनन्त पर्यायों सहित समस्त द्रव्योंको युगपत् जानता और देखता है ।

दाणे लाहे भोए । परिभोए वीरिए य सम्मत्ते ॥
णवकेवललद्धीउ। दंसणणाणे चरित्तेय ॥ ५२७ ॥

अर्थ-दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, और चारित्र ये ९ लब्धि होती हैं ।

उक्कस्सं च जहण्णं । पज्जायं विहरिऊण सिज्झेई ॥
सो अकिरियसमुग्घाउ । जस्साउसमाणि कम्माणि ॥ ५२८ ॥
जस्स ण हु आउसरिसा- । णि णामगोयाणि वेयणीयं च ॥
सो कुणदि समुग्घायं । णियमेण जिणो ण संदेहो ॥ ५२९ ॥

अर्थ-जिनके आयु कर्मकी स्थिति के बराबर अन्य कर्मों की स्थिति बाकी है वह केवली जिन समुद्घात किये बिनाही उत्कृष्ट व जघन्य पर्याय पूर्ण करके सिद्ध होते हैं और जिनके नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मकी स्थिति आयु कर्मकी स्थिति के बराबर नहीं है अर्थात अधिकहै वह केवली जिन नियम से समुद्घात करते हैं इसमें सन्देह नहीं है।

छम्मासाउगसेसे । उप्पण्णं जस्स केवलं णाणं ॥
सो कुणइ समुग्घायं । इदरो पुण होइ वा भणिओ ॥ ५३० ॥

अर्थ-जिसके छःमहीने की आयु बाकी रहने पर केवल ज्ञान उत्पन्न होताहै वह केवली समुद्घात करताहै और इसके सिवाय अन्यकेवली समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते हैं। कुछ नियम नहीं ऐसा कहाहै।

अंतोमुहुत्तसेसाउगम्मि । दंडं कवाडपयरं च ॥
जयपूरणमथ कवाडं । दंडं णियतणुपमाणं च॥ ५३१ ॥

अर्थ=जब आयुकर्म अन्तर्मुहूर्त मात्र बाकी रहता है (और अन्य गोत्र आदिकर्मों की स्थिति अधिक रहती है) तब (तिन गोत्र आदिकर्मों की स्थिति आयु कर्मके बराबर करने के लिये समुद्घात करनेवाला केवली अपनी आत्माके प्रदेश १४ रज्जु ऊंचे दंडाकार करताहै, दूसरे समयमें कपाटके आकार तीसरे समयमें प्रतराकार और चौथे समयमें लोकपूरण (समस्त लोकप्रदेशों में व्यापना) करताहै पांचवे समयमें पुनःप्रतराकार छठे समय में कपाटके आकार सातवें में दंडाकार और आठवें समय में अपनी देह प्रमाण करता है।

एवं पएसपसरण- । संवरणं कुणइ अट्ठसमयेहिं ॥
होहिंति जोयजरमें । अघाइकम्माणि सरिसाणि ॥ ५३२ ॥

अर्थ-इस प्रकार आठ समयमें अपनी आत्माके प्रदेशोंको वि-

स्तारूप व संकोचरूप करताहै और तेरहवें गुणस्थान के अन्त में बाकीके अघातियाकर्मों की स्थिति आयु कर्मके बराबर होजाती है।

बायरमणवचजोगे। रुंभइ थो थूलकायजोगेण ॥
सुहुमेण तं पि रुंभइ। सुहुमे मणवयणजोगे य॥ ५३३ ॥
तो सुहुमकायजोगे। वेयंतो झायए तइयं सुक्कं ॥
रुंभित्ता तं पि पुणो। अजोगकेवलिजिणो होइ ॥ ५३४ ॥

अर्थ-इसके पश्चात् स्थूल काययोगसे स्थूल मनोयोग और स्थूल वचनयोगका निरोध करता है और सूक्ष्मकाययोगसे स्थूल काययोग व सूक्ष्म मन वचन योगोंका निरोध करताहै।तिस समय सूक्ष्म काययोगका अनुभव करने वाला वह केवली तीसरे शुक्ल ध्यानका ध्यान करता है और तिसके योगसे सूक्ष्म काययोगका भी निरोध करके अयोग केवली अर्थात् १४ वां गुणस्थानवर्ती होजाताहै।

बावत्तरिपयडीऊ। चउत्थसुक्केण तत्थ घाएइ ॥
दुचरमसमयम्मि तऊ। तेरस चरमम्मि णिहवइ॥ ५३५ ॥
तीसम्मि चेव समये। लोयग्गे उड्ढगमणसब्भाऊ ॥
संचिट्ठइ असरीरो। पवरट्ठगुणप्पऊ णिच्चं ॥ ५३६ ॥

अर्थ-तिस चौदहवें गुणस्थान में चौथे शुक्लध्यान के योग से पहले समयमें ७२ बहत्तर कर्म प्रकृतियों का नाश करता है और दूसरे समयमें बाकीकी १३ तेरह प्रकृतियों का नाश करता है। फिर उसी अन्तिम समयमें ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण लोक के अग्रभागमें देहरहित और उत्कृष्ट आठ गुणोंसे युक्त होकर हमेशाके लिये निवास करता है।

सम्मत्तणाणदंसण-। वीरियसुहमं तहेव अवगहणं ॥
अगुरुलहुमव्वाबाहं। सिद्धाणं वण्णिया गुणट्ठेदे ॥ ५३७ ॥

अर्थ-सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व, ये सिद्धोंके आठ गुण वर्णन कियेगयेहैं।

मोहक्खयेण सम्मं। केवलणाणं हणेइ अण्णाणं ॥
केवलदंसण दंसण। अणंतवीरियं चांतरायेण॥ ५३८ ॥
सुहुमं च णामकम्मं। आऊहणणेण हवइ अवगहणं ॥
गोयं च अगुरुलहुयं। अव्वाबाहं च वेयणीयं च ॥ ५३९ ॥

अर्थ-मोहनीय कर्मके क्षय होनेसे सम्यक्त्व नामका गुण, ज्ञानावरणीयके क्षयसे केवलज्ञान, दर्शनावरणीय के क्षयसे दर्शन, अन्तरायके नाशसे अनन्तवीर्य, नामकर्मके नाशसे सूक्ष्मत्वगुण, आयुकर्मके नाशसे अवगाहनागुण, गोत्र कर्मके क्षयसे अगुरु लघुत्वनामका गुण और वेदनीय कर्मका अभाव होनेसे अव्याबाधत्व नामका गुण प्रगट होताहै। (निश्चयनय से सिद्धात्मा अनंत-गुणस्वरूप है)।

जं किं पि सोक्खसारं । तिस्सु वि लोयेसु मणुयदेवाणं ॥
तमणंतगुणं पि ण एय- । समयसिद्धाणुभूयसोक्खसमं ॥ ५४०॥

अर्थ-तीन लोकमें मनुष्य और देवोंको जितना कुछभी उत्तम सुख है उससे अनंतगुणा सुखभी एक समय में अनुभव किये हुए सिद्धों के सुखकी बराबरी नहीं कर सकताहै।

सिज्झइ तइयम्मि भवे । पंचमए को वि सत्तमट्ठमए ॥
भुंजिवि सुरमणुयसुहं । पावेइ कमेण सिद्धपयं ॥ ५४१ ॥

अर्थ-(उत्तमरीतिसे श्रावकाचार को पालने वाला गृहस्थ) तीसरे भवमें मुक्तिको प्राप्त होता है और कोई २ देवलोक और मनुष्यलोकके सुखोंको क्रमसे भोगकर पांचवें, सातवें, या आठवें जन्ममें सिद्ध पदको प्राप्त होता है।

आसी ससमय परसम- । यविदू सिरिकुंदकुंदसंताणे ॥
भव्वयणकुमुयवणसिसि- । रयरो सिरिणंदि णामेण ॥ ५४२ ॥

अर्थ-श्री कुन्द कुन्दस्वामीकी आम्नाय में श्रीनन्दिनामधारक आचार्य अपने मत और परमतके शास्त्रोंका जानने वाला और भव्यजनरूप कमलोंके वनको चंद्रमाके समान प्रफुल्लित करनेवाला हुआ।

कित्ती जस्सेंदुसुब्भा सयलभुवणमज्झे जहेत्थं भमित्ता ।
णिच्चं सा सज्जणाणं हियवयणसोए णिवासं करेइ ॥
जो सिद्धंतंबुरासिं सुणयतरणमासेज्ज लीलावतिण्णो ।
वण्णेउं को समत्थो सयलगुणगणं सेवियंतो वि लोए ॥ ५४३ ॥

अर्थ-जिसकी चन्द्रमासमान निर्मलकीर्ति सर्वजगत् में भले प्रकार फैलकर सज्जन पुरुषों के हृदय वचन और कानों में सदा निवास करती थी-और जो उत्तम नयरूपी नौका में बैठकर सिद्धांतरूपी

समुद्रको सहजही तरता था ऐसे उस श्रीनन्दी आचार्य के सकल गुणों को वर्णन करने को कोई न समर्थ होसकताहै ? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं है ।

सिस्सो तस्स जिणिंदसासणरउ सिद्धंतपारंगउ ।
खंतीमद्दवलाहवाइदसहाधम्मम्मि णिच्चोज्जउ ॥
पुण्णेंदुज्जलकित्तिपूरियजउ चारित्तलच्छीहरो ।
संजाउ णयणंदिणाम मुणिणो भव्वासयाणंदउ॥ १४४ ॥

अर्थ-उस श्रीनन्दी मुनिका शिष्य नयनन्दि हुवा जो जैन शास्त्रों में रत और सिद्धान्त का पारगामी था तथा क्षमा, मार्दव आर्जव आदि दशधर्म के पालनेमें सदा उद्यमवान् रहताथा और ऐसी चारित्ररूपी लक्ष्मीका धारक था जिसकी निर्मलकीर्ति पूर्णमासी के चन्द्रमा समान जगत्में फैली हुईथी और जो भव्यजीवोंके चित्तको आनन्द का देनेवाला था ।

सिस्सो तस्स जिणागम- । जलणिहिवेलातरंगधुयमाणो ॥
संजाउ सयलजए- । विक्खाउ णेमिचंदुत्ति ॥ १४५ ॥

तस्स पसाएण मए । आयरियपरंपरागयं एयं ॥
वच्छल्लायररइयं । भवियाणमुवासयज्झयणं ॥ १४६ ॥

अर्थ-उस नयनन्दी का शिष्य नेमिचंद्र हुवा जो जिनागमरूपी समुद्रकी लहरोंसे धुयमान था और सर्व जगत्में विख्यात था उस नेमिचंद्रके प्रसादसे मैंने यह आचार्यपरम्परासे चला आया जो उपासकाध्ययनशास्त्र, तिसको प्रेम और आदर से भव्यजीवों के लिये रचाहै ।

जं किं पि एत्थ भणियं । अयाणमाणेण पवयणविरुध्दं ॥
खमिऊण पवयणधरा । सोहित्ता तं पयासंतु ॥ १४७ ॥

अर्थ-इस ग्रंथमें अज्ञानभावसे यदि मुझसे कुछ आगमके विरुद्ध कथन किया गया हो तो उसके लिये आगमके जानने वाले मुझ पर क्षमाकरें और शुद्ध करके प्रकाशित करें ।

छच्चसया पण्णासु- । त्तराणि एयस्स गंथपरिमाणं ॥
वसुणंदिणा णिवध्दं । वित्थरियव्वं वियड्ढेहिं ॥ १४८ ॥

अर्थ-छःसौ पचास श्लोक (३२ अक्षरों का एक श्लोक) परिमाण यह उपासका ध्ययन नामका ग्रंथ वसुनन्दी आचार्यने रचा है। विद्वान् लोगों करके यह विस्तार करने योग्य है।

समाप्त.

देवशास्त्र गुरुपूजा संस्कृत प्राकृत

भाषा अर्थ सहित।

जैसा भाव होता है वैसाही कर्म बन्ध होता है, पूजन पाठको न समझकर केवल द्रव्य चढ़ानेसे पुण्यबंध नहीं होसक्ता है, इसकारण हमने देवशास्त्र गुरुपूजा संस्कृत प्राकृतको जो नित्य पूजनके समय पढ़ी जाती है सरल हिन्दीभाषा अर्थ सहित छपवाया है जिससे पूजन करनेवालोंको पूजन पाठका अर्थ सहजही में समझ में आसक्ता है, पाठको समझनेके पश्चात् पूजन करने से अवश्य पुण्य प्राप्त होगा इसकारण सब भाइयोंको यह पुस्तक मँगानी चाहिये मूल्य तीन आना।

द्रव्यसंग्रह।

बहुत विस्तारके साथ सरल हिन्दी भाषाटीका सहित सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र, छै द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्व और नव पदार्थ जैन सिद्धान्त के समझने के वास्ते यह अतिही उत्तम पुस्तक है। श्रीगोमट्टसार और तत्वार्थ सूत्रकी महान् टीका श्रीसर्वार्थसिद्धिके आधारपर हमने इसकी टीका बहुत विस्तारके साथ लिखी है और सर्व कथनको बहुत सरल और सुगम कर दिया है। इस ग्रन्थको पढ़कर सब कोई जैनसिद्धान्त से जानकार होसक्ता है यह एक बहुत ही उत्तम ग्रन्थ बनगया है सब जैनी भाइयोंको इस ग्रन्थ का पढ़ना अति आवश्यक है। हम इस ग्रन्थकी बहुत प्रशंसा नहीं करना चाहते हैं बल्कि अपने भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि वह एक बार मँगाकर देखें तब वह अपने आप ही प्रशंसा करने लगें। मूल्य सिर्फ आठ आना।

परमात्मप्रकाश।

सरल हिन्दी भाषाटीका सहित—यह प्राकृत ग्रन्थ निश्चय कथनी का एक उत्तम ग्रन्थहै इसके पढ़नेसे वैराग्य की बहुत बड़ी प्रेरणा होती है और चित्त में शांति प्राप्त होती है—अर्थ बहुत सुगम कियागया है—मूल्य छै आना।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।

यह भी श्रावकाचार का अतिही उत्तम संस्कृत ग्रन्थ है सरल हिन्दीभाषा में टीका करके छपवाया है हिंसाका स्वरूप इस ग्रन्थ में बहुत ही उत्तम वर्णन कियागया है—मूल्य चारआना।